जन - ज्ञान

(मासिक)

□

सम्पादक
—राकेशरानी
दूरभाप : ५६६६३६

—पता
१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग
निकट ३१-नाईवाला
करौल बाग, नई दिल्ली-५

□

वार्षिक मूल्य १५)
विदेश में—३ पौंड
(हवाई डाक से)
१ पौंड : समुद्री डाक से
आजीवन—२५१)

□

वर्ष ७ : अंक ६
माघ—संम्वत् २०३१
फरवरी—१९७५

महर्षि दयानन्द का जन्मदिन १२ फरवरी को श्रद्धा-उत्साह से मनाइये।

◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆

शिवरात्रि का पर्व सर्वत्र ११ मार्च को अध्यात्म की गंगा बहा, सम्पन्न कर, सभी को प्रभु से मिलने की राह बताइए !

◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆

१२ अप्रैल १९७५ को आर्यसमाज शताब्दी पूरे बल और उत्साह से मनाएँ।

◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆

दयानन्द के वीर सैनिको ! संसार के हर क्षेत्र पर वेद-पताका फहरा कर शताब्दी मनाओ ! घर-घर ऋषि दयानन्द का सन्देश पहुँचाओ ! उठो और पूरे बल से कार्यारम्भ कर दो !

◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆

भूलना नहीं, १९७५ आर्यसमाज का शताब्दी वर्ष है। इस वर्ष में आर्यसमाज की जय के स्वर भू मंडल में गूँजने चाहिएँ।

◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆ ◆

सत्यार्थप्रकाश ऋषि जीवन चरित्र और वेद अधिक से अधिक हाथों में पहुँचाएँ।

जनवरी १९७५ | # अँक में पढ़िए | माघ संवत् २०३१

१२ अप्रैल १९७५ को आर्य समाज शताब्दी मनाने की तैयारी आज से ही आरंभ करें।

वेदोपदेश

राजधर्म विषय

ओ३म् इहैवाग्नेऽअधि धारया रयिं मा त्वा निक्रन् पूर्वचितो निकारिणः।

क्षत्रमग्ने सुयमस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्द्धतां तेऽअनिष्टृतः। यजु० २७।४

पदार्थ—(इह) अस्मिन्त्संसारे (एव) (अग्ने) विद्युद्वद्वर्त्तमान (अधि) उपरिभावे (धारय) अत्र सहितामिति दीर्घः। (रयिम्) श्रियम (मा) (त्वा) त्वाम् (नि) नीचैः (क्रन) कुर्युः (पूर्वचितः) पूर्वैः प्राप्तविज्ञानादिभिर्वृद्धाः (निकारिणः) नितरां कर्तुं स्वभावाः (क्षत्रम्) धन राज्यं वा (अग्ने) विनयप्रकाशित (सुयमम्) सुष्ठु यमा यस्मात्तत् (अस्तु) (तुभ्यम्) (उपसत्ता) उपसीदन् (वर्द्धताम्) (ते) तव (अनिष्टृत) अनुपहिंसितः॥

अन्वयः—हे अग्ने त्वमिह रयिं धारय पूर्वचितो निकारिणस्त्वा मा निक्रन्। हे अग्ने ते सुयमम् क्षत्रमस्तु येनोपसत्ता सन्ननिष्टृतो भूत्वैव भवान्नविधर्धताम्। तुभ्यं क्षत्रं सुखदातृ भवतु॥

भावार्थ—हे राजन्नेवं विनय धरेर्येन पूर्ववृद्धा जनास्त्वां बहु मन्येरन्। राज्ये सुनियमान् प्रवर्त्तय येन स्वयं स्वराज्यं च विघ्नविरह भूत्वा सर्वतो वर्द्धेत भवन्तं सर्वोपरि प्रजा मन्यत च॥

पदार्थ—हे (अग्ने) बिजुली के समान वर्त्तमान विद्वन्! आप (इह) इस संसार में (रयिम्) लक्ष्मी को (धारय) धारण कीजिए (पूर्वचितः) प्रथम प्राप्त किये विज्ञानादि से श्रेष्ठ निरन्तर कर्म करने के स्वभाव वाले जन (त्वा) आपको (मा, नि, क्रन्) नीच गति को प्राप्त न करें। हे (अग्ने) विनय से शोभायमान सभापते (ते) आपका (सुयम) सुन्दर नियम जिससे चले वह (क्षत्रम्) धन व राज्य (अस्तु) होवे जिससे (उपसत्ता) समीप बैठते हुए (अनिष्टृतः) हिंसा वा विघ्न को नहीं प्राप्त हो के (एव) ही आप (अधि वर्द्धताम्) अधिकता से वृद्धि को प्राप्त कीजिये (तुभ्यम्) आपके लिए राज्य व धन सुखदायी होवे॥

भावार्थ—हे राजन्! आप ऐसे उत्तम विनय को धारण कीजिये, जिससे प्राचीन वृद्ध जन आपको बड़ा माना करें। राज्य में अच्छे नियमों को प्रवृत्त कीजिये जिससे आप और आपका राज्य विघ्न से रहित होकर सब ओर से बढ़े और प्रजाजन आपको सर्वोपरि माना करें।

—महर्षि दयानन्द

क्रांति का आधार
नारे नहीं : काम और केवल काम

उलझन यह है कि भारत में नारों की आँधी आ गयी है। नारों के अतिरिक्त और किसी को कुछ भी आता नहीं, भाता नहीं। यह समझ लीजिए कि ठगी का सब से नया ढंग है नारा। कोई नारा लगाकर कहता है कि हम १९७५ तक आर्य राज्य स्थापित कर देंगे, तो जनता पागल हो जाती है। कोई नारे लगाकर डेढ़ करोड़ की अपीलें करता है पर उन सारी योजनाओं को पढ़कर हँसी भी आती है और रोना भी, कि यह कैसे सत्य के पुजारी हैं जो असत्य की बाढ़ लाकर सत्य की खेती करना चाहते हैं।

पंचवर्षीय योजनाओं ने देश को तबाह कर दिया। नारों ने सब कुछ चौपट कर दिया। हमारे देश की जनता इतनी भावुक है कि वह भले बुरे का अन्तर करने में असमर्थ हो रही है। हम क्रांति चाहते हैं पर काम करना नहीं चाहते, इसीलिए सब कुछ बेकार होता जा रहा है।

सबसे बड़ा क्रांतिकारी था, आर्यसमाज। जिसने चहुँमखी क्रांति का शंख नाद किया था। यह क्रांति जीवन के हर क्षेत्र में थी। इसी क्रांति-ज्वाला ने पाप-ताप-संताप दग्ध किये थे। आर्यसमाज शताब्दी के पावन ऐतिहासिक अवसर पर, इसी अग्नि को धधकाने की आवश्यकता थी। आज आवश्यकता थी कि हम बढते मत वादों को चुनौती देते। मिटाते अज्ञान, हटाते अंधविश्वास, सजाते ज्ञान, उठाते धर्म और फैलाते नया स्वर्णिम प्रकाश······

राम-कृष्ण की पावन धरती पर फिर से सतयुग लाने के लिए क्रांति करना हर व्यक्ति के लिए सभव नहीं। त्याग-बलिदान की आदर्श परपरा से अपने को मिटा कर ही राष्ट्र-धर्म को बचाया जा सकता है, इस तथ्य को जितना शीघ्र हम समझ लें उतना ही कल्याण है।

चूड़ियाँ पहनकर कायरों की भाषा में बात करने वाले वाक् शूर क्रांति नहीं कर सकते। क्रांति के लिए लेखराम का बलिदान और श्रद्धानन्द का त्याग अमरता की ध्वजा लहरा रहा है।

सोयी आर्य जनता को कैसे जगाएँ ? भटके नेताओं को कैसे समझाएं कि आर्यसमाज शताब्दी एक गर्जन, हुँकार, और क्रांति के बिगुल के साथ आयोजित की जानी चाहिए थी। एकता का मंत्र और स्वार्थ त्याग की ज्योति का प्रसार ही शताब्दी की सफलता का आधार बन सकता है।

हम चाहते हैं कि इन पक्तियों को जो भी ऋषि भक्त पढ़े वह आज से ही काम में लग जाए। अपने आसपास चारों ओर ऋषि दयानन्द का नाम गुंजाइए। कुछ ऐसा कीजिए कि जिधर दृष्टि जाए वहीं ऋषि दयानन्द का नाम और चित्र दिखायी पड़े। हम चाहते कि सारा संसार जान जाए कि गुरुदेव देव दयानन्द क्या थे ? कितने उपकार हैं उनके मानव पर······

आर्य बंधुओ ! नेताओ ! कुछ ऐसा करो कि शताब्दी पर आर्यसमाज की जय का स्वर सर्वत्र गूंज उठे।

—राकेशरानी

रसीद की प्रतिलिपि भेजिए

कानपुर आर्यसमाज स्थापना शताब्दी में हमारा धन चोरी होने के साथ ही उस बैग में एक रसीद बुक भी खो गयी है। जिन सज्जनों ने वहां जन-ज्ञान का शुल्क या वेदभाष्य का धन जमा कराया हो वे अपनी रसीद की पूर्ण प्रतिलिपि हमें भेज दें ताकि हम आदेश अंकित कर सकें। सभी की असुविधा के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं--

मंत्री
दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली-५

भारत की अवनति के ७ कारण

पुस्तक का नया संस्करण छप गया है। मूल्य ४५) सैकड़ा, रखा गया है। शीघ्र आदेश भेजिए—

जन-ज्ञान-प्रकाशन नई दिल्ली-५

आर्यसमाज के इतिहास में स्वर्णिम अवसर

सुप्रसिद्ध लेखक व आर्य विद्वान्

आचार्य जगदीश विद्यार्थी

१६ फरवरी १९७५ रविवार

वसन्त पंचमी के पवित्र दिन

महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज की उपस्थिति में आर्यसमाज मंदिर करौल बाग नयी दिल्ली-५ में सन्यास आश्रम में प्रवेश करेंगे।

आर्य जनता मे साग्रह प्रार्थना है कि वेद प्रचार के महान् दिव्य कार्य को गति देने के इस अपूर्व धर्म आयोजन में पहुँच कर अपनी श्रद्धा-भावना अर्पित करें—

संन्यास ग्रहण के पश्चात् माननीय विद्यार्थी जी विदेशों में वेद पताका फहराने जा रहे हैं—

—संपादक

कौन सुनेगा, किसे सुनाऊँ मन की व्यथा कहानी ?

शताब्दी आ गयी और जो चाहिए था वह कुछ भी न हो सका, संसार के सैकड़ों देशों, में वेद का नाद गुंजाने की कौन सोचे ? भारत के प्रदेशों में सत्य धर्म का प्रचार कैसे हो ? पर विचार कौन करे ? जन मानस के पिछड़े वर्ग में सत्य का प्रकाश कौन पहुँचाए ? बुद्धिजीवी वर्ग के भटके मस्तिष्क को कैसे बदला जाए, और सबसे बढ़कर यह कि इन ज्वलंत प्रश्नों का हल ढूंढने के लिए किसके पास समय है ?

और अब तो शताब्दी आ गयी, नारों और योजनाओं के अतिरिक्त और कुछ भी तो नहीं हो सका। हमारा मन बहुत कुछ करने को मचलता है, किन्तु साधनों का अभाव और अपनों का विरोध सबसे बड़ी बाधा बनकर खड़ा हो गया है। आर्यजनता भी नारों और योजनाओं में भटक चुकी है। उसकी भक्ति ऋषि दयानन्द के प्रति न रहकर आज के व्यक्तियों के प्रति बँट गयी है। क्या होगा, कैसे होगा, कौन जानता है !

हम चाहते हैं कि शताब्दी पर और कुछ हो या न हो पर सत्यार्थ प्रकाश—ऋषि जीवन, वेद—स्वामी जी के चित्र और ट्रैक्ट भारी संख्या में छप जाएँ और समाजें उन्हें भारी संख्या में बाँटें। किन्तु इस विषय में भी आर्यसमाजों व नेताओं की उदासीनता देखकर हम सोचते हैं कि आखिर क्या हो गया हमारे मानस को !

अब लम्बी योजनाओं का समय नहीं रहा, बहुत थोड़ा अवसर बचा है, कुछ करने का ! हमारी आवाज अगर आप के मन की मोहनिद्रा को तोड़ सके, तो जागो और कार्यारम्भ कर दो। १२ अप्रैल १९७५ तक और सारे काम बन्द कर दो। और लग जाओ वेद की ध्वनि गुंजाने में। जो अवकाश ले सकें वे अवकाश लेकर कार्य करें, अन्यथा जितना भी समय आप के पास है उसमें पूरी शक्ति से वेद का नाद गुंजाओ !

अपने-अपने क्षेत्र की सुधि लो और जोरों से काम में लग जाओ ! प्रत्येक ऋषि भक्त के मन में उत्कंठा जागे, भावना उभरे और जहाँ जिसकी जितनी भी शक्ति हो उससे पूरे बल और श्रद्धा से कार्यारम्भ किया जाए तो अब भी बहुत कुछ हो सकता है।

लेकिन यदि अब भी नींद न खुली और केवल जलसे जलसों तक ही रहे तो शताब्दी की स्वर्ण वेला बीत जाएगी। संसार को जगाने का एक ऐतिहासिक अवसर चला जाएगा।……क्या आप के मन में किसी भी तरह ऋषि दयानन्द की जय के स्वर गुंजाने की भावना नहीं उभर सकती ?

बहुत लिख चुका हूँ, लिख भी रहा हूँ किन्तु हमारी यह विचार तरंगें आप का मन ग्रहण नहीं कर पा रहा। कारण……कुछ समझ नहीं आता। फूट—स्वार्थ—मोह में उलझ कर शायद हमारा आत्मा अन्धकार से ढंक चुका है। धर्म के प्रचार

और संरक्षण के लिए भाषण और प्रस्तावों से अधिक और हमारे पास कोई कार्यक्रम नहीं है । हम इस लकीर को तोड़कर आप से आगे बढ़ने की प्रार्थना करते हैं ।

हमारा आग्रह है कि १२ अप्रैल तक सारे झगड़े, भेद, द्वेष, फूट को मिटाकर आगे बढ़ो । काम करो । ऋषि दयानन्द का, आर्यसमाज का, वेद का प्रचार करो । हमारे पास जितने साधन आपने दिये हैं उस से हम से जो कुछ बन पड़ रहा है कर रहे हैं । हमारे पास पूंजी के नाम पर कुछ नहीं है । जो आता है वह प्रतिदिन हम व्यय कर देते हैं, जमा करने के पक्ष में हम नहीं रहे । आप जो देते हैं वह हम आप को ही दे देते हैं । सत्यार्थ प्रकाश, ऋषि जीवन—पोस्टर—ट्रैक्ट भारी संख्या में हम लागत से अत्यन्त कम मूल्य पर दे रहे हैं ।

संस्थान का सब कुछ आर्य जनता के प्रति अर्पित है । हम केवल साधक हैं, साधन प्रभु देता है या प्रभु-भक्त पर सारी इच्छाएँ प्रचार की······पूर्ति के लिए आपका सहयोग चाहती हैं । इच्छाएँ असीम हैं । जो होगा··· ··सब स्वाहा होगा यज्ञ में, शक्ति उभरेगी, धर्म जागेगा और 'ओ३म्' पताका सर्वत्र फहराएगी ।

१२ अप्रैल १९७५ मनाने की तैयारी कीजिए । जोश से, उमंग से, साधना से, बस कुछ ऐसा कीजिए कि गर्व से प्रत्येक आर्य कह सके—

धरती को आर्य बनाएँगे !
जग में जयगान गुंजाएँगे !
ऋषि दयानन्द के सैनिक हम,
वैदिक सन्देश सुनाएँगे—

हमने अन्न ग्रहण नहीं किया

२ मई १९७३ को हमने अन्न इस घोषणा के साथ छोड़ा था कि वेद भाष्य का कार्य पूर्ण होने पर ही अन्न ग्रहण करूँगा । बीच में स्वास्थ्य गड़बड़ हो जाने और कई शुभचिन्तक मित्रों के आग्रह से मन बना लिया कि अथर्ववेद भाष्य पूर्ण होने पर अन्न स्वीकार करूँगा किन्तु जिस दिन अथर्ववेद का विमोचन हुआ, उस दिन आत्मा ने इतना झकझोरा कि प्रतिज्ञा भंग के अपराध से मैं कांप गया···और फिर अपनी चिन्ता छोड़ कर संकल्प पूर्ति को ही श्रेयस्कर समझा ।

अभी काम शेष है । हमारे तप में, त्याग में कुछ न्यूनता है, अन्यथा धर्म की रक्षा के लिए देश की धर्म प्राण जनता उमड़ पड़ती । वेद भाष्य का जो अंश शेष है वह तो १९७५ में प्रभु पूर्ण करेंगे ही···हमारा कार्य तो 'वेद' भाष्य पूर्णता के साथ-साथ उस महान् सत्य को पुनः प्रतिष्ठित करना है जिसका मार्ग दर्शन स्वयं प्रभु ने आदि सृष्टि में किया था ।

धर्म की रक्षा और प्रसार के लिए हमारे पास जो कुछ था वह अर्पित कर चुके । अपनी न्यूनताओं को हम जानते हैं हमारा प्रयत्न है कि हम और ऊपर उठ सकें । ताकि प्रभु का ज्योतिर्मय प्रकाश धरती के प्रत्येक भाग में फैलाने में सफलता मिल सके ।

परमात्मा की अमरवाणी के प्रचार के लिए हम लगे हैं, लगे रहेंगे । हमारे कदम लड़खड़ाएँ नहीं, प्रभु हमें शक्ति दें कि आप सभी के आशीर्वाद से वेद भाष्य का कार्य पूर्ण हो ।

जिस दिन हमारा मन समझ लेगा कि वेद भाष्य पूर्ति की बाधाएँ समाप्त हो चुकी हैं, उस दिन हम भोजन करेंगे ।

स्वतंत्रता का पावन मास

२६ जनवरी भारत का गणतन्त्र दिवस ही भारत के स्वतन्त्रता संग्राम का प्रेरणा दिवस रहा है। इसी दिन हम १९२९ के पश्चात् से १९४७ तक निरन्तर स्वतन्त्रता का संकल्प लेते रहे हैं। इस तरह जनवरी मास हमारी आजादी का प्रतीक पावन पर्व बन चुका है।

किन्तु जिस स्वतन्त्रता के लिए हमने संघर्ष किए थे, बलिदान दिए थे, उससे आजादी के बाद हम दूर-दूर और दूर होते गए! जिन कल्पना महलों का हमने निर्माण किया था वे चूर-चूर हो गए और होते जा रहे हैं।

स्वराज्य की भेंट हमने सबसे पहले अपने 'धर्म' को अर्पित किया। भारत की सबसे अनमोल निधि स्वतन्त्रता के सुर्योदय के साथ ही हमने भेंट चढ़ा दी। धर्म को तिलांजलि देकर हमने अपने सारे स्वप्नों पर जो प्रबल प्रहार किया उसके परिणाम आज हमारे समक्ष हैं। धर्म हमारी आत्मा था, जीवन था, शरीर की धड़कन था। पर वह गया तो फिर शेष क्या रहा? धर्म के साथ ही नैतिकता भी हमसे विदा हो गयी।

और जन्म लिया भ्रष्टाचार ने, रिश्वत ने, स्वार्थ ने, भोगवाद ने, पशुता ने। १९४७ के बाद होश संभालने वाली नयी पीढ़ी इन्हीं गुणों से परिपूर्ण थी। उसमें कूट-कूट कर नए युग के सभी कीटाणु भरे हुए थे

और इन सबने मिलकर जिस नए भारत का निर्माण किया, वह हमारे सामने है। जिन्होंने १९४७ से पहले का भारत देखा है वे समझ सकते हैं, इस विषमता को। कितना अन्तर है दोनों में।

क्या मिला स्वतन्त्रता में, क्या खोया इसमें, इसका लेखा-जोखा लगाते हुए भी भय लगता है। मन कांप जाता है, स्थिति पर दृष्टिपात करते हुए। स्वर्णिम उषा की चाह लेकर हम चले थे, मिला घनघोर अंधेरा, यह क्या हो गया भगवन्! किससे पूछें? कौन उत्तर देगा?

'भारत' को गारत करने वाले तो लाखों पैदा हो गए हैं पर इसे सजाने सँवारने वाला कोई दिखायी नहीं दे रहा। इसे लूटने वालों की तो कमी नहीं पर इस पर न्योछावर होने वालों का सर्वथा अभाव हो गया है। क्या बनेगा, क्या होगा, कहाँ जाएँगे? " प्रश्न हमें उलझा रहे हैं, भटका रहे हैं, सता रहे हैं।

उपदेश किसे दें, आदेश कौन सुनेगा, कौन समझेगा देश हित को! स्वतंत्रता का पर्व प्रतिवर्ष मनाया जाता है, पर कैसी स्वतन्त्रता? चोरी, डाके, झूठ, व्यभि-

चार, भ्रष्टाचार की स्वतन्त्रता तो सबको मिल गयी। पर भारत को 'स्वर्गादपि गरीयसी' बनाने की स्वतन्त्रता कहाँ गयी ?

कहाँ गया, देव दयानन्द का स्वप्न, तिलक का स्वराज्य, गांधी का रामराज्य, भगत सिंह का आदर्श,सुभाष का जयहिन्द ! बलिदानों से मिली स्वतन्त्रता का उपभोग करने वाले नहीं जानते कि उन्होंने देश को मिटाकर, भारत माँ की भव्य भूमि को दीन-हीन बनाकर कितना बड़ा अपराध किया है ? इसका प्रायश्चित्त कौन करेगा ?

माँ की कोख कभी सूनी नहीं होती। वह एक बार फिर नर-रत्नों को जन्म देगी और समय आएगा कि स्वार्थ समय की आँधी के खूनी पंजों को फौलादी हाथ हटाएंगे और तब नया सवेरा आएगा। ऐसा सवेरा जब हर घर से वेद की ऋचाएँ गूंजेंगी। त्याग की गंगा का अमृत हर घर में बहेगा। प्यार बरसेगा, धर्म उभरेगा, जीवन पनपेगा और तब संसद में बैठे लोग नेता नहीं, सेवक बनेंगे ! कोठियों में नहीं झोंपड़ियों में रहकर अपनी भारत माँ को सजाने सँवारने का व्रत लेंगे।

भारत के गणतन्त्र दिवस पर हम भारत को
धर्मराज्य बनाने का व्रत लेते हैं।

आगया हमारा १००वर्षीय जन्म दिन

चैत्र शुदि प्रतिपदा को आज से १०० वर्ष पूर्व बम्बई में ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज स्थापित किया था। क्या-क्या कल्पनाएँ उस समय ऋषि ने की होंगी, क्या-क्या सपने देखे होंगे, कितनी आशाएँ लगायी होंगी, यह सब उस समय के सन्दर्भ में बैठकर हा समझा जा सकता है।

ऋषि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज विश्व के भाग्योदय का कारण बना। भ्रांत धारणाएं, कपोल कल्पनाएँ और अभद्र परम्पराएँ समाप्त हुईं और एक ऐसी विचार गंगा का प्रवाह बहा जिसमें स्नान कर मनुष्य को मनुष्य बनने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

गुरुदत्त, लेखराम, श्रद्धानन्द, हंसराज, नारायण स्वामी की परम्परा ने आर्यसमाज को विश्वविजयी बनाया। दर्शनानन्द की प्रतिभा ने नए दर्शन को प्रसारित कर अज्ञान की धज्जियाँ उड़ायीं। तपस्वी साधक आर्यसमाज की हुंकार ने मतवाद को कंपाया, अधर्म को धँसाया और सत्य की पताका को सर्वत्र लहर-लहर लहराया !

आर्यसमाज अजेय था, आर्यसमाज अजेय है, आर्यसमाज अजेय रहेगा। वह दिव्यास्त्र है, ब्रह्मास्त्र है। उसके पास सत्य का बल और ईश्वर का संबल है। वह निर्भय है, अमर है, शाश्वत है, अनुपमेय है।

हम जिस आर्यसमाज के अनुयायी हैं, वह आर्यसमाज ऋषि दयानन्द द्वारा संस्थापित है !

—लेखराम, श्रद्धानन्द जैसे शहीदों के रक्त से सिंचित है।
—वह धर्म प्रसारक आर्यसमाज है।
—वेद प्रचारक आर्यसमाज है।
—त्यागी तपस्वी, संन्यासी महात्माओं का आर्यसमाज है।
—हमारा रोम-रोम आर्यसमाज का पुजारी है।

—हमारे जीवन का हर क्षण आर्यसमाज पर न्योछावर है।

—हम आर्यसमाज के लिए जीवित हैं।

—हम आर्यसमाज के लिए मरेंगे।

—इसी आर्यसमाज का १००वाँ जन्म दिन १२ अप्रैल १९७५ शनिवार, चैत्र शुदि प्रतिपदा संवत् २०३२ को पड़ रहा है।

—इस दिन को धूम-धाम से मनाने के लिए हमने आर्यजनता और ऋषि-भक्तों का आवाहन किया था।

—हमें हर्ष है कि सार्वदेशिक सभा को अपना हठ छोड़कर १२ अप्रैल को ही समारोह मनाने की घोषणा करनी पड़ी। अन्यथा गतवर्ष उनके महामन्त्री महोदय ने अपनी एक विज्ञप्ति द्वारा शताब्दी के नाम पर कोई भी समारोह नवम्बर १९७५ तक न किया जाए, यह घोषणा कर दी थी। (देखिए ५ मई १९७४ के सार्वदेशिक पत्र का मुख पृष्ठ)

इस अनुचित आदेश को जनता ने नहीं माना और 'सार्वभौम आर्यसमाज शताब्दी परिषद्' के नेतृत्व में १२ अप्रैल १९७५ को सर्वत्र भू-मंडल में समारोह मनाने की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं। जनता में उत्साह उभरा, उमंग आयी और १२ अप्रैल १९७५ को 'आर्यसमाज की जय' के स्वर गुंजाने का संकल्प सर्वत्र जागृत हो गया।

परिणामस्वरूप सार्वदेशिक सभा ने भी अपना पहला आदेश वापिस लेकर १२ अप्रैल को सर्वत्र समारोह मनाने की घोषणा की। इस भूल सुधार के लिए हम सभा के अधिकारियों को हार्दिक बधाई देते हैं।

अब सारा आर्यसमाज पूरे बल से १२ अप्रैल को शताब्दी समारोह मनाने की तैयारी में लग गया है। समय अब रहा नहीं, कार्य सर्वत्र पूरे बल से आरम्भ हो जाना चाहिए।

१—प्रत्येक आर्यसमाज को अपनी एक समिति बना कर तुरन्त कार्य की रूपरेखा बना लेनी चाहिए।

२—१ अप्रैल से १२ अप्रैल तक सारी दीवारें पोस्टरों से पाट देनी चाहिएँ।

३—सत्यार्थ प्रकाश, ऋषि जीवनी और छोटे-छोटे प्रचार ट्रैक्टों से अपने-अपने क्षेत्रों में प्रभावपूर्ण वातावरण उत्पन्न करें।

४—यथासम्भव प्रयत्न करें कि सर्वत्र दीपमाला की जाएँ।

५—आर्यसमाज के १०० वर्ष नामक ट्रैक्ट भारी संख्या में बाँटा जाए। इसके लिए हमने मूल्य में भी विशेष कमी कर दी है।

६—स्वामी दयानन्द के चित्र भारी संख्या में लगाएं जाएँ। (यह भी अत्यन्त सस्ते हम दे रहे हैं।)

७—'वेद' भाष्य को प्रत्येक परिवार में पहुँचाने का प्रयत्न करें। (वेद भाष्य हम लागत से भी कम मूल्य पर दे रहे हैं।

८—१२ अप्रैल को विशाल सभाओं का आयोजन करें।

९—सारा नगर 'ओ३म्' की छपी झंडियों से सजाया जाए।

१०—७ अप्रैल से यज्ञ आरम्भ किया जाए, जिसकी पूर्णाहुति १२ अप्रैल को प्रातः ९ बजे की जाए।

इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त आप अपने क्षेत्र में जो भी उचित समझें करें। पर मूल भावना यह हो कि हमारा—आर्यसमाज का—गौरव सर्वत्र व्याप्त हो जाए।

◆◆

जब जाओगे !

तुम न बचोगे, मैं न बचूँगा सत्य यही है।
काल बलि सब को निगलेगा, सत्य यही है।
पाप-पुण्य तुम को गति देते, बनकर जीवन का आधार।
जीवन तो यह कर्म भूमि है, जिससे मिलता लक्ष्य विचार।
समझ रहे तुम, यहीं रहोगे, किन्तु मृत्यु का गीत बजेगा ?
तब क्या होगा, क्या कर लोगे ?
कौन बचा है, कौन रुका है ?
आज सत्य को ठुकराकर तुम
हंस सकते हो, जो सकते हो।
किन्तु समय की अंतिम घंटी बजने पर
सम्राटों का भी सर झुक जाता।
सोच समझ कर, जीवन सच को,
समझो भाई ! जानो भाई।
धर्म नाम है जीवन के इस सच को
समझ बूझ चिन्तन करने का।
पूजा पाठ कर्मकाण्ड को, धर्म समझकर
तुम भूले हो, भटक रहे हो।
मृत्यु आए तुम को, हम को,
इस से पहले स्वयं जगो रे।
सुख के साथ सभी बीतेगा,
दुःख भागेंगे, सत्य जान लो,
और समझ लो, तुम को, हम को
सब को, इस धरती से जाना होगा,
जाना होगा, जब जाओगे
क्या होगा, तब पास तुम्हारे।
मेरे भाई, कुछ तो समझो;
ऐसी बात करो, कुछ जाने से पहले,
अपनी गठड़ी भारी कर लो,
ऐसी गठरी, जो साथ हमारे जा सकती हो।

★ —भारतेन्द्र

शहीद को प्रणाम

भारतेन्द्र

तुम सदा महान् !
राष्ट्र धर्म ज्ञान के हे जयी निशान !
शहीद को प्रणाम।
मातृ भूमि, धर्म, सत्य, त्याग को बचा गए,
ज्ञान, यज्ञ, शुद्धि भाव दीप को सजा गए,
तुम विजय की भावना के भाव को उगा गए,
प्यार की पवित्र बेल, वृक्ष पर चढ़ा गए,
कांपता हुआ तना, तना कि पाप झुक गए,
वीरता के प्राण !
काँपती निशा में तुम जला रहे थे दीप,
भागते दिवस में तुम, सजा रहे थे प्रीति,
अधर्म प्राण दान देके, ला रहे थे जीत,
स्वयं सुलग रहे थे इसलिये कि कोई गीत,
गूँजता रहे सदा, उगे नया विहान
दे सके जो ज्ञान !
रक्त बूँद गिरी, धरा भी लाल हो गयी,
काल के कराल गाल में, तुम्हें भी खो गयी,
तुम मिटे, तुम जले, तुम गये, खुशी गयी,
मगर जो साधना सजी वह फैलती गयी,
निराश नाश का नशा, ले गया उड़ान।
ज्योति पुञ्ज प्राण !
आज मैं तुम्हें अमर शहीद कह करूँ प्रणाम !
मैं तुम्हारे रक्त से, ले सकूँगा क्या उठान ?
स्वप्न सत्य बन सकें या, सत्य का तने वितान ?
शहीद की परंपरा का कौन कर सकेगा मान ?
प्रश्न छू रहे हृदय गूंजता शहीद गान !
अब चलो जवान ! लो न तुम विराम !
रक्त को प्रणाम। शहीद को प्रणाम !

तुम सदा महान् !!

महर्षि दयानन्द बलिदान स्थल तुरन्त खरीदा जाए !

□□

पिछले दिनों अजमेर यात्रा के बाद हमने भिनाई हाउस तुरन्त खरीदने के लिए अपील की थी। हर्ष की बात है कि आर्यसमाज नला बाजार अजमेर के बहादुर अधिकारियों ने अब यह बलिदान स्थल प्राप्त करने का संकल्प कर लिया है। हमारा आग्रह है कि सभी आर्यभक्त तुरन्त अधिक से अधिक धन "मन्त्री आर्यसमाज नला बाजार अजमेर" को भेजें। इस सम्बन्ध में वीर अर्जुन के यशस्वी सम्पादक श्री के० नरेन्द्र जी का एक लेख भी हम नीचे दे रहे हैं। —सम्पादक

□

महर्षि की निर्वाण स्थली

आर्यसमाज के बड़े-बड़े नेता मुझसे नाराज रहते हैं क्योंकि मैं उनकी दिन रात प्रशंसा करने की बजाय उन्हें यह याद कराता रहता हूँ कि उनके सामने काम कितना अधिक है और वे कितना कम कर रहे हैं। कई बार तो मुझे उनकी नीयत पर भी सन्देह हो जाता है। यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि वह हाथ पैर भी मारते हैं। ऐसी स्थिति में आश्चर्य यह है कि वर्षों से अजमेर में महर्षि दयानन्द की निर्वाण स्थली के निर्णय की समस्या हल

होने में नहीं आती। जहाँ स्वामी जी का निधन हुआ, उसे भिनाई हाऊस कहा जाता है। जो इसका मालिक था, उसने आर्य समाज वालों को पेशकश की कि वह उसे खरीद लें। किन्तु आर्य समाज के मठाधीश यही निर्णय न कर सके कि क्या करें। यह नहीं कि उनके पास पैसा नहीं जिससे यह उसे खरीद सकते और फिर कोई करोड़ों की यह सम्पत्ति नहीं जो वह खरीद न सकते हों। प्रश्न केवल एक लाख रु० का था किन्तु निजी रंजिशों और विरोध के कारण यह एक लाख भी न दिया गया। अन्त में नला बाजार अजमेर के प्रबन्धकों की आन ने जोश मारा और उन्होंने निर्णय किया कि वह इसे खरीद लेंगे। यह कोठी दो सज्जनों ने खरीदी थी। आधी एक मुसलमान ने और आधी एक ईसाई ने। उनसे यह मिले और उन्हें इस बात के लिए रजामन्द कर लिया कि वे इसे उन्हें ८० हजार रु० में दे दें। इसमें से २५ हजार रु० अदा कर दिए गए और शेष ५५ हजार की अदाएगी शीघ्र ही की जानी है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा अजमेर व परोपकारिणी सभा आदि संस्थाओं के पास रुपया है जिसका प्रयोग यह इस पवित्र कार्य हेतु कर सकती हैं। किन्तु मठाधीश इस रुपए पर साँप की तरह बैठे हैं। उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं कि यह स्थान हाथ से निकल जाएगा किन्तु वे यह राशि देने को तैयार नहीं। सौभाग्य की बात है कि नलाबाजार के प्रबन्धकों ने इस बात का निश्चय कर रखा है कि भले ही उन्हें और कोई सम्पत्ति गिरवी रखनी पड़े, वे इस स्थान को हाथ से न जाने देंगे। आश्चर्य है कि इस स्थिति में भी आर्यों की बड़ी-बड़ी संस्थाएं यह तुच्छ सी राशि देने को तैयार नहीं हैं ताकि महर्षि का यह स्मारक आर्यों के कब्जे में आ जाये। और इसके बाद धुआंधार भाषण झाड़े जाते हैं कि आर्य समाज प्रगति करे वह क्या करे जब लोग यह देखते हैं कि मठाधीशों का अमल पुराने जमाने के महन्तों से अच्छा नहीं जो संस्था का धन निजी लाभ में लगाना ही जानते थे।

—के० नरेन्द्र

आर्य नेताओं के लिए क्या यह लज्जा की बात नहीं है कि गुरुदेव दयानन्द का बलिदान स्थल यवन—ईसाइयों के हाथ में गया। क्या इस पाप का प्रायश्चित कर आर्य जनता भिनाई भवन लेने के लिए सहयोग न देगी—?

—संपादक

वेदों का ज्ञान मानव मात्र के लिये है

नेपाल के राजदूत श्री कृष्ण बामभल्ल का अविकल अथर्ववेद भाष्य विमोचन समारोह में दिया गया भाषण

अथर्ववेद भाष्य के विमोचन समारोह में भाग लेने का जो सुअवसर आज मुझे मिला है उसके लिये श्री भारतेन्द्र नाथ जी तथा दयानन्द संस्थान के प्रति मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। मैं मानता हूँ—ऐसा अवसर ईश्वरीय देन है।

मूल वेद संस्कृत भाषा में हैं। मूल वेद को बहुत कम विद्वान् ही समझ पाते हैं। दयानन्द संस्थान ने वेद का हिन्दी भाष्य तैयार किया है। करोड़ों लोगों के लिये वेद का ज्ञान सुलभ बन गया है। यह एक अति प्रशंसनीय कदम है— पुनीत कार्य है। मैं स्वच्छ दिल से अपने साधारण शब्दों में इस कदम को एक क्रान्तिकारी कार्य कहूँगा। मुझे ऐसा लगता है वेदों का भाष्य वेदों में सचित ज्ञान को समाज के लिये उपलब्ध कर मनुष्य जीवन को अधिक सार्थक और मानव संसार को सुखमय बनाने में बहुत बड़ा योग प्रदान करेगा।

वेद हिन्दुओं का पवित्र ग्रन्थ है। विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ वेद ही है। हिन्दुओं के लिये जिस तरह ईश्वर सर्वज्ञ है और नित्य है उसी तरह चारों वेद ईश्वरीय और सत्य है। मैं मानता हूँ—वेद हिन्दुओं का धर्मग्रन्थ है परन्तु वेद का ज्ञान किसी एक धार्मिक समुदाय के लिये सीमित नहीं है। यह ज्ञान व्यापक है। सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिये है। मानव मात्र का कल्याण—वेदों का यही ध्येय है, लक्ष्य है।

आज का संसार विज्ञान के प्रभाव में विकसित और पल्लवित हो रहा है। वैज्ञानिक उपलब्धियों और सुविधाओं के चमत्कार के वशीभूत होकर मनुष्य ईश्वरीय आचरण को भूल रहा है जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य चिन्ताओं में जकड़ता जा रहा है। मनुष्य के मस्तिष्क में अन्धकार है और हृदय में तनाव। इन रोगों से पीड़ित, व्याधियों से विचलित मानव को वैदिक ज्ञान द्वारा ही बचाया जा सकता है, उद्धार किया जा सकता है। वैदिक ज्ञान द्वारा ही अन्धकार, चिन्ता अथवा तनाव पर नियन्त्रण सम्भव है। जिस देश में चारों वेदों का प्रादुर्भाव हुआ, जिस देश में ऋषियों के सहारे वैदिक धर्म का परिपालन हुआ उसी देश भारत को विश्व में मनुष्य के जीवन को सार्थक और सुखमय बनाने के लिये आध्यात्मिक नेतृत्व देना चाहिये। वेद की शिक्षा के माध्यम से भारत अवश्य ही विश्व को आध्यात्मिक नेतृत्व प्रदान कर सकता है—यह मेरा विश्वास है।

आज यह देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई कि अथर्ववेद के हिन्दी भाष्य का विमोचन कर आप लोगों ने वेदों के ज्ञान का द्वार समाज के लिये खोल दिया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस कार्य का समाज पर बहुत अच्छा प्रभाव देखने को मिलेगा। वेद भाष्य करने का प्रयास प्रशंसनीय है। जिन लोगों ने भाष्य करने के लिये अपना अमूल्य समय प्रदान किया है और शक्ति का प्रयोग किया है वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं। मैं उन सब को अपनी तरफ से बधाई देता हूँ। ★

अथर्ववेद भाष्य विमोचन

स्वर्णिम समारोह की कुछ झांकियां

कु० आभा ने वैदिक मन्त्रों का मधुर पाठ कर अभ्यागतों का स्वागत किया !
इससे पहले यज्ञ और सन्ध्या से कार्यक्रम का आरम्भ हुआ।
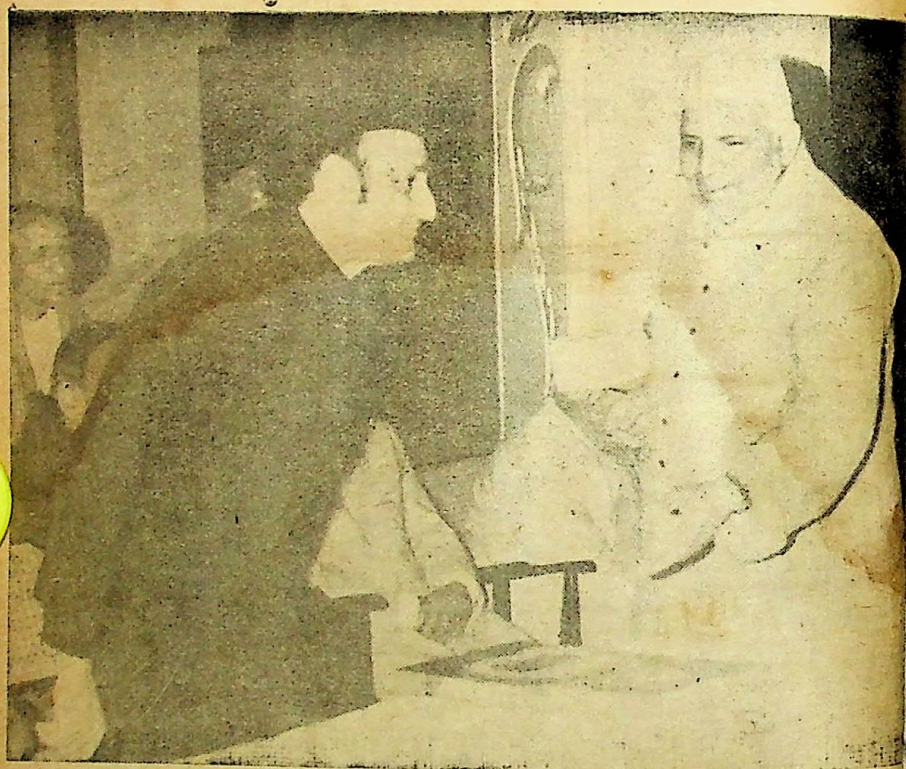
ऊपर : डा० कर्णसिंह को प्रति भेंट करते हुए प० भारतेन्द्रनाथ

नीचे : सार्वभौम आर्यसमाज शताब्दी परिषद् के अध्यक्ष स्वामी ओमानन्द। नैपाल के राज
महामहिम श्री कृष्ण बाम मल्ल। महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज और अ
भारतीय हिन्दूमहासभा के अध्यक्ष प्रो० रामसिंह, समारोह में पधारकर शोभा बढ़ा रहे
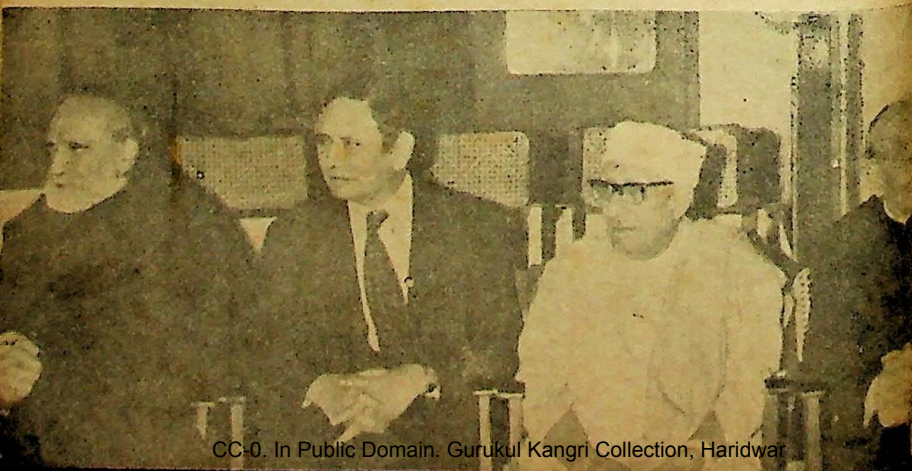
वेदभाष्य के विमोचन कर्ता डा० कर्णसिंह :
स्वागत भाषण करते हुए
संस्थान के अध्यक्ष पं० भारतेन्द्रनाथ

समारोह के अध्यक्ष माननीय प्रो० शेरसिंह का स्वागत करते
हुए संस्थान के अध्यक्ष पं० भारतेन्द्रनाथ।
प्रो० शेरसिंह द्वारा आर्यसमाज की सेवाओं की सराहना करते
हुए आपने कहा कि मन्त्री पद के उच्चासन पर बैठ
कर आप ने जितनी सेवा की है उतनी आज तक
किसी और ने नहीं की।

समारोह में जब डा० कर्णसिंह नें वेद मन्त्रों का सस्वर पाठ किया तो
उपस्थित जन-समूह हर्ष विभोर हो गया।

डा० कर्णसिंह ने कहा—वेद मानव मात्र को मुक्त करने वाले हैं,
उनका विमोचन कोई क्या करेगा ?

नेपाल के महामहिम राजदूत
श्री के० बी० मल्ल
अपना भाषण देते हुए

पूरा भाषण पृष्ठ १६ पर पढ़ ।

आर्यसमाज के गौरव और संसार
के महान् तपस्वी साधक
महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज
अपने आशीर्वाद के साथ
डा० कर्णसिंह को वेद भाष्य भेंट
करते हुए
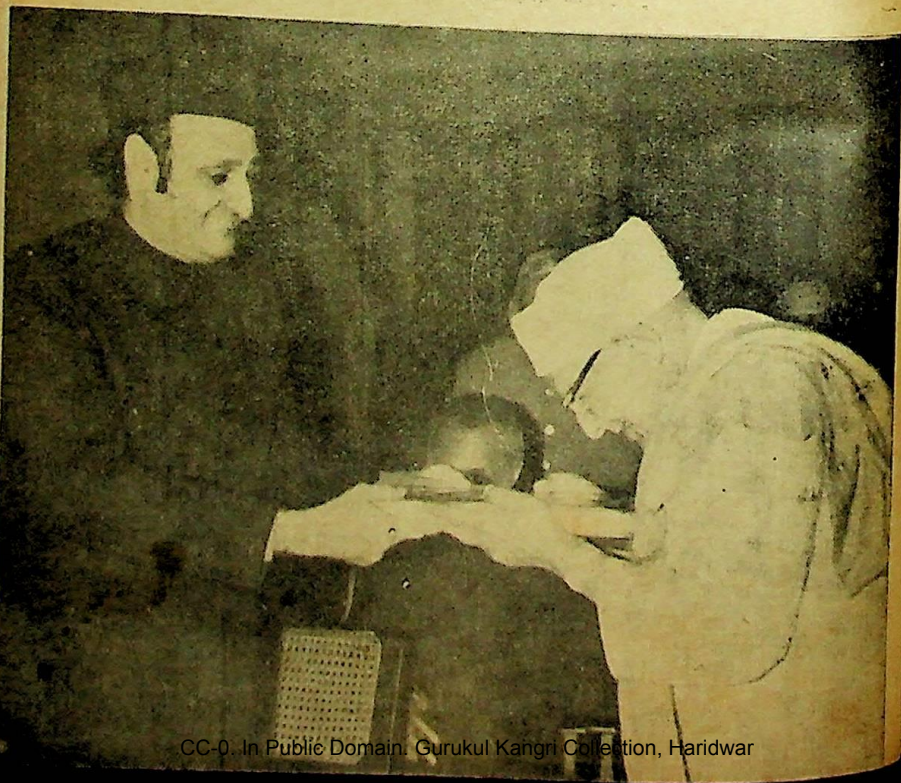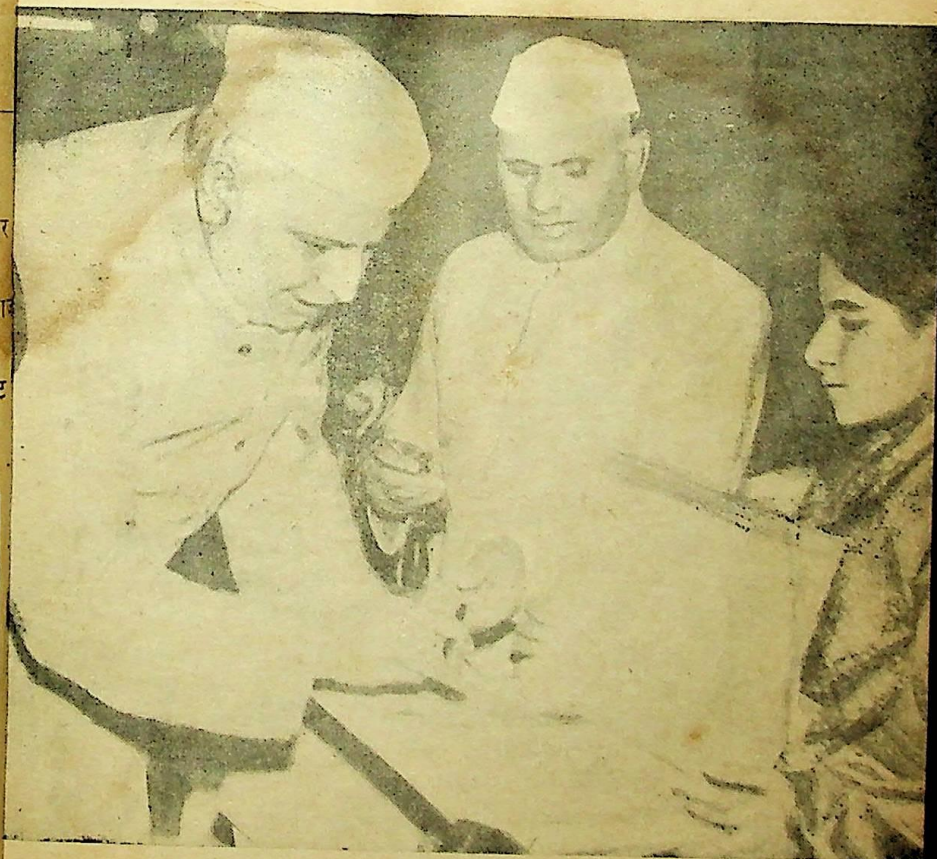
माननीय प्रो० शेरसिंह को प्रति भेंट करते हुए पं० भारतेन्द्रनाथ
साथ में अंग्रेजी जन-ज्ञान की सम्पादक
कु० ज्योत्स्ना एम० ए० खड़ी हैं।
प्रो० शेरसिंह ने अपने भाषण में ग्रन्थ के सौन्दर्य और श्रद्धायुक्त
प्रकाशन की भूरि-भूरि प्रशंसा की।
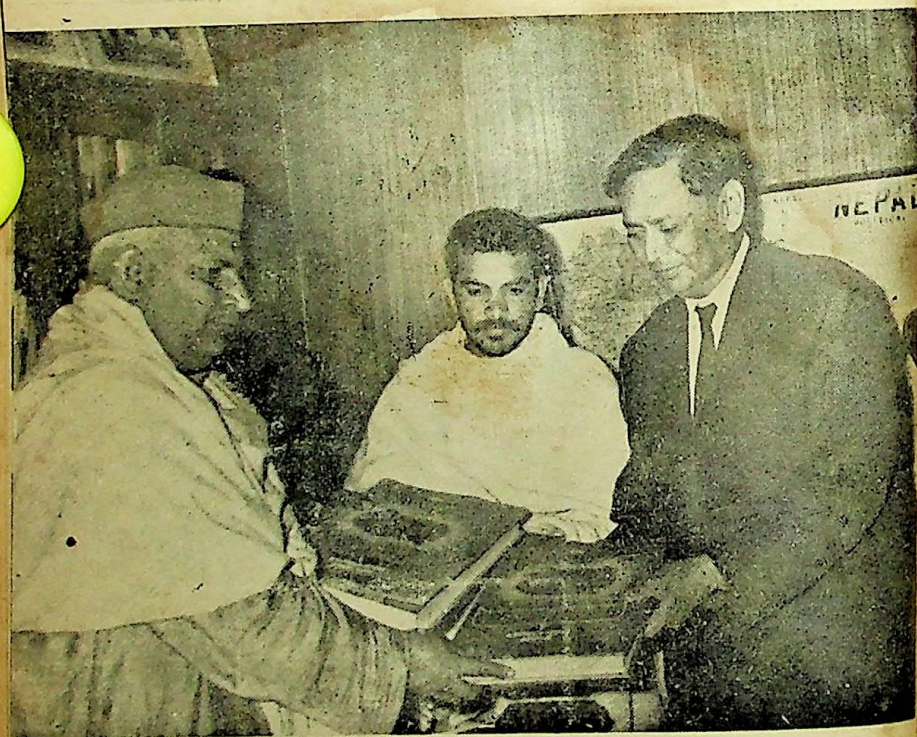
नैपाल के राजदूत महामहिम श्री कृष्णबाम मल्ल को दूतावास
में संस्थान के अध्यक्ष पं० भारतेन्द्रनाथ ने सम्पूर्ण हिन्दी
वेदभाष्य भेंट किया। साथ में गुरुकुल झज्जर
के पुरातत्त्व विभाग के व्यवस्थापक
श्री विरजानन्द जी विद्यार्थी
भी खड़े हैं।

भारत की अवनति के सात कारण

★ आचार्य जगदीश विद्यार्थी

भारतवर्ष के, नहीं-नहीं, संसार के आदि-सम्राट् महर्षि मनु ने हिमालय की चोटी पर खड़े होकर भारतवर्ष के गौरव की डिण्डिमघोषणा करते हुए कहा था—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ।। —मनु० २।२०

आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न अग्रजन्मा ब्राह्मणों के चरणों में बैठकर संसार के लोग अपने-अपने योग्य विद्या और चरित्रों की शिक्षा ग्रहण करें।

विष्णुपुराण में भारत की महत्ता का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते,
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।।

—विष्णुपु० २।३।२४

देवगण भी निरन्तर यही गान करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्ग के मार्गभूत भारतवर्ष में जन्म लिया है, वे पुरुष हम देवताओं की अपेक्षा भी अधिक धन्य हैं।

आधुनिक युग के महान् सुधारक, भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रबल समर्थक, आर्यसमाज के प्रवर्त्तक, आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती भारतवर्ष के गौरव और महिमा का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

"यह आर्यावर्त्त देश ऐसा है, जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसलिए इस भूमि का नाम स्वर्णभूमि है क्योंकि यही स्वर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसीलिए सृष्टि के आदि में आर्य लोग इसी देश में आकर बसे।.........जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा करते हैं कि पारसमणि पत्थर सुना जाता है, वह बात तो झूठी है परन्तु आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहेरूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही स्वर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।"

—सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास

फ्रेंच लेखक जैकालियट महोदय ने अपने ग्रन्थ Bible in India में भारतवर्ष को 'सभ्यता का हिंडोला' कहा है। वे लिखते हैं—

"Land of ancient India ! Cradle of Humanity, Hail ! Hail revered motherland whom centuries of brutal invasions have not yet burried under the dust of oblivion. Hail Fatherland of faith, of love, of poetry and of science, may we hail a revival of thy past in our Western future."

प्राचीन भारत-भूमे ! सभ्यता के हिंडोले ! तुझे नमस्कार है । पूज्य मातृ-भूमे ! तुझे शताब्दियों तक होने वाले असभ्य, पाशविक एवं बर्बर आक्रमण भी विस्मृति के गढ़े में दबाने में असमर्थ रहें हैं अत: तुझे प्रणाम । श्रद्धा, प्रेम, कला और विज्ञान के जनक भारतवर्ष ! तेरा अभिवादन है । प्रभु कृपा करें कि निकट भविष्यत् में हम तेरे प्राचीन गौरव का पाश्चात्य जगत् में स्वागत कर सकें ।

जिस समय ईसाई लेखक मैक्समूलर ने इस पुस्तक को पढ़ा तो वह जल-भुनकर राख हो गया । परिणामस्वरूप पुस्तक की आलोचना करते हुए उसने लिखा—"ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक महोदय भारतीय ब्राह्मणों के धोखे में आ गया है ।"

महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों के अध्ययन से मैक्समूलर के विचारों में परिवर्तन हुआ, उसके विचारों में एक क्रांति आई, तब जीवन के अन्तिम दिनों में उन्होंने भारतवर्ष की गुरुता एवं महानता इन शब्दों में व्यक्त की—

"If I were to look over the whole world to find out the country most richly endowed with all the wealth, power and beauty that Nature can bestow, I should point to India.

If I were asked under what sky the human mind has most fully developed some of its choicest gifts, has most deeply pondered on the greatest problems of life and has found solutions of some of them which well deserve the attention even of those who have studied Plato and Kant, I should point to India.

And, if I were asked myfelf from what literature we here in Europe, we who are nurtured almost exclusively on the thoughts of the Greeks and Romans and of the Semetic race, the Jewish, may draw their corrective which is most wanted in order to make our inner life more perfect, more universal, in fact more truly human, a life not for this life only, but a transfigured and eternal life, again I should point to India."

—India : What can it Teach us.

"यदि मुझसे सम्पूर्ण विश्व में एक ऐसे देश के सम्बन्ध में पूछा जाए, जिसे प्रकृति ने सर्व साधनों से सम्पन्न बनाया हो, जो सौन्दर्य शक्ति और सम्पत्ति से समलंकृत हो तो मैं भारतवर्ष की ओर संकेत करूंगा ।

यदि मुझसे पूछा जाए कि किस आकाश के नीचे मानव-मस्तिष्क ने अपने मुख्यतम गुणों और शक्तियों का विकास किया, जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर सबसे अधिक गहराई से विचार किया और उनमें से कुछ के ऐसे समाधान ढूंढ निकाले जिनकी ओर उन्हें भी ध्यान देना चाहिए जिन्होंने

प्लेटो और काँट का अध्ययन किया है, तो मैं भारतवर्ष की ओर इशारा करूँगा।

और यदि मैं अपने आप से पूछूँ—किस साहित्य का आश्रय लेकर हम यूरोपीय, जो कि बहुत कुछ केवल यूनानियों, रोमनों और सेमेटिक (यहूदी) जाति के विचारों के साथ पले हैं, वह सुधारक वस्तु प्राप्त कर सकते हैं, जिसके द्वारा हम अपने जीवन को अधिक पूर्ण, अधिक विस्तृत एवं व्यापक, अत्यन्त विश्वजनीन एवं उच्चतम मानवीय बना सकेंगे, जो जीवन न केवल इस लोक से सम्बन्धित हो, अपितु शाश्वत एवं दिव्य जीवन से सम्बद्ध हो, तो मैं पुनः भारवर्ष की ओर इंगित करूँगा।"

भारतवर्ष को ज्ञान और धर्म का आदि स्रोत स्वीकार करते हुए प्रो० हीरेन (Prof. Heeren) लिखते हैं—

"India is the source from which not only the rest of Asia but the whole Western world derived their knowledge and their religion." —Historical Researches Vol. II P. 45

भारतवर्ष ही वह स्रोत है जिससे न केवल एशिया ने अपितु समस्त पाश्चात्य जगत् ने भी अपनी विद्या और धर्म प्राप्त किया।

मेजर डी० ग्राह्मपोल का कथन भी पठनीय है; वे लिखते हैं—

"भारत उस समय सभ्यता और विद्या के उच्च शिखर पर पहुँचा हुआ था, जिस समय हमारे पूर्वज अभी वृक्षों की छाल के बने हुए कपड़े पहनकर अफ्रातफ्री में इधर-उधर भटक रहे थे।" —मार्डन रिव्यू जन १९३४

चेम्बर विश्वकोश में भारत का गौरव इन शब्दों में प्रकट किया गया है—

"India is the epitome of the whole world."

—Chamber's Encyclopaedia P. 337.

भारत समस्त संसार का निचोड़ है।

भारतवर्ष की प्रशंसा में एल्फिन्स्टन महोदय लिखते हैं—

"इस (भारत) की प्राकृतिक छटा एक दम आँखों में बैठ जाती है और फिर सदा के लिए अपनी अमिट स्मृति हृदय में छोड़ जाती है।"

मुसलमान लेखक 'वस्साफ' अपने इतिहास-ग्रन्थ 'तारीखे-वस्साफ' में लिखते हैं—

"सभी इतिहासवेत्ता यह मानते हैं कि भारतवर्ष भूमण्डल का एक अतीव रमणीय और चित्ताकर्षक देश है। इसकी पावन पुनीत मिट्टी के रजकण वायु से भी अधिक हल्के और पवित्र हैं और इसकी वायु की पवित्रता स्वयं पवित्रता से भी अधिक पवित्र है। इसके हृदयहारी मैदान स्वर्ग की स्मृति को जगाने वाले हैं।

वे पुनः लिखते हैं—

"अगर दा'वा कुनम् कि जन्नत दर हिन्द अस्त मुता'ज्जिब मशो चिह जन्नत बजाते खुद, मुकाबिल ऊ नेस्त।"

अर्थात् यदि मैं यह दावा करूँ कि स्वर्ग भारत में ही है तो तू आश्चर्य मत कर, क्योंकि स्वयं स्वर्ग भी भारत की समानता नहीं कर सकता।

हजरत मोहम्मद साहब भारतवर्ष की ओर मुख करके नमाज (सन्ध्या) पढ़ा करते थे। एक दिन उनके किसी मित्र ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने

कहा—"मुझे भारतवर्ष की ओर से वहदानियत (एकेश्वरवाद) के झोंके आते हैं।"

इसी बात को डा० इकबाल ने यूँ लिखा है—

वहदत की लय सुनी थी दुनिया ने जिस मकाँ से।
मीरे अरब को आई ठण्डी हवा जहाँ से॥

जिस समय डा० इकबाल की आँखों प[illegible] था, जिस समय वह पाकिस्तान के समर्थ[illegible]र्ष के सम्बन्ध के लिखा था—

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी, वह गुलसिताँ हमारा॥

संसार में जितना ज्ञान और विज्ञान फैला वह सारा भारतवर्ष से ही गया। यह बात मैं नहीं कहता, स्वयं विदेशियों ने इस बात [illegible]। अपनी बात के समर्थन के लिए हम कुछ साक्षियाँ उद्धृत करते [illegible]

मि० डेलमार महोदय लिखते हैं

"पश्चिमी संसार को जिन बातों पर अभिमान है, [illegible] भारतवर्ष से ही वहाँ गई हैं। और-तो-और [illegible] इस समय यूरोप में पैदा होते हैं, हिन्दुस्तान [illegible] मल-मल, रेशम, घोड़े, टीन इनके [illegible] लोहे और [illegible] यूरोप में भारत से ही हुआ। केवल [illegible] गणित, चित्रकारी और कानून भी भारत[illegible]।"

—सूक्ति[illegible] उद्धृत

मैक्डानल महोदय स्वीकार करते [illegible] कृत्रिम नाक बनाने की विद्या भारतवर्ष से ही अन्यत्र गई। उनके [illegible]

"In modern days Europ[illegible] has borrowed the operation of artificial nose[illegible] where English-men became acquainted with the [illegible] century."

—A Hist[illegible] Sanskrit Literature, P. 362

भाव यह है कि नाक का आपरेशन तथा कृत्रिम नाक का बनाना अंग्रेजो ने भारतीयों से विगत शताब्दी (अट्ठारहवीं शताब्दी) में सीखा था।

भारतीयों के शल्यशास्त्र और उपकरणों की प्रशंसा करते हुए डा० श्रीमती मैंनिग लिखती हैं—

"The surgical instruments of the Hindus were sufficiently sharp, indeed as to be capable of dividing a hair longitudinally.

—Ancient and Medaeval India Vol. II P. 364

अर्थात् भारतीयों के चीरफाड़ के यन्त्र इतने तेज और बारीक होते थे कि वे बाल को लम्बाई में भी चीर सकते थे।

इसी प्रकार रेवरेण्ड पीटर पार्सिवल का मत है कि—

"उनकी (भारतीय आर्यों की) पुस्तकों में १२७ प्रकार के चीर-फाड़ के अस्त्रों का वर्णन है।"

—Land of the Veda, P. 139.

एल्फिस्टन महोदय History of India में लिखते हैं—

"भारतीयों का शल्य-शास्त्र उसी कमाल का है, जैसी उनकी ओषधियाँ।"

डा० वेबर महोदय के विचार भी पठनीय और मननीय हैं—

"In surgery, too the Indians seem to have attained a special proficiency, and in this department European surgeons might perhaps, even at the present day, still learn something from them as indeed they have already borrowed from them the operation of rhinoplasty."

ऐसा प्रतीत होता है कि शल्यशास्त्र में भी भारतीयों ने एक विशेष योग्यता प्राप्त कर ली थी और इस विभाग में यूरोप के चिकित्सक कदाचित् आज भी भारतीयों से कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं क्योंकि उन्होंने नाक का आपरेशन भारतीयों से सीखा है।

गणित भी भारतवर्ष से ही अन्य देशों में पहुंचा। इस तथ्य को स्वीकार करते हुए श्री विलयमज्ज (Bilyamza) लिखते हैं—

"To the Hindus is due the invention of Algebra and Geometry and their application to Astronomy."

बीजगणित और रेखागणित का आविष्कार और ज्योतिष विद्या में उनका प्रयोग भारतीयों ने ही किया था।

संसार के सभी विद्वान् इस बात से सहमत हैं कि यूरोपीय देशों ने गणित-विद्या यूनान से सीखी थी। परन्तु यूनान ने यह विद्या कहां से सीखी? उत्तर है—भारतवर्ष से। अरब वालों ने यह ज्ञान भारतीयों से सीखा, इसलिए उन्होंने इसका नाम रखा 'हिन्दसः ज्ञान'। यहां तक कि १, २, ३, ४, ५ इत्यादि संख्यावाची अंकों का नाम भी उन्होंने हिन्दसः रक्खा। इस सम्बन्ध में श्रीमती मैंनिग ने ठीक ही लिखा है—

"The Arabs were not in general inventors but recipients. Subsequent observation has confirmed this view; for, not only did Algebra in an advanced state exist in India prior to the earliest discloser of it by the Arabians to moden Europe, but the names by which the numbers have become known to us are of Sankrit origin."

—The India of Old by Shri Umrao पृष्ठ २४ से उद्धृत

अरब निवासी (गणित के) आविष्कारक नहीं थे। उन्होंने यह ज्ञान भारतीयों से प्राप्त किया था। बाद की खोजों से यह बात सिद्ध हो गई है क्योंकि जिस समय अरब ने यह ज्ञान यूरोपियनों को दिया उससे पूर्व भी भारत में बीजगणित उन्नत अवस्था में विद्यमान था। इतना ही नहीं, वे संख्यावाचक अंक जिस नाम से प्रसिद्ध हैं, वह भी संस्कृत का ही है।

वेद में सीसे की गोली का वर्णन भी विद्यमान है—

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो [illegible]

[illegible] १। १६। ४

ऐ आततायी! यदि तू हमारी गौ का हनन [illegible] तू हमारे घोड़े को मारेगा और यदि तू हमारे पुरुषों को [illegible] हम तुझ पास से अर्थात् सीसे की गोली से फाड़ देंगे।

वाल्मीकि रामायण में तोप का वर्णन प्राप्त होता है। अवलोकन कीजिए—

उच्चाट्टालध्वजवतीं शतघ्नीं शतसंकुलाम् ॥

—वा० रा० बाल ५ । ११

अयोध्या नगरी कैसी थी उसका वर्णन करते हुए आदि कवि वाल्मीकिजी कहते हैं—वहाँ ऊँची-ऊची अट्टालिकाएँ थीं जिनपर ध्वज फहरा रहे थे और वे बहुत-सी तोपों से व्याप्त थीं अर्थात् अयोध्या के परकोटे पर स्थान-स्थान पर तोपें रखी हुई थीं।

पाठकगण ! न केवल भारत ही महान् था, अपितु उसके निवासी भी महान् थे। भारतवासियों के उज्ज्वल एवं धवल चरित्र के गीत तो विदेशियों ने भी गाये हैं। मैगस्थनीज जब भारत में आया और यहाँ का भ्रमण किया तो उसने देखा कि यहाँ के लोग धन-धान्य से सम्पन्न हैं, सोने-चाँदी के आभूषण अपने पास रखते हैं। इतना होते हुए भी वे घरों में ताला नहीं लगाते थे। शायद यही कारण था कि संस्कृत भाषा में ताले के लिए कोई शब्द भी न था। जिस देश के निवासियों का आदर्श—

मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।* —यजु० ४० । १

—रहा हो, वे दूसरों के धन की ओर दृष्टि भी कैसे डाल सकते थे ? यहाँ तो बच्चे-बच्चे के हृदय में बाल्यकाल से ही यह भावना भरी जाती थी—'**परद्रव्येषु लोष्ठवत्**"—दूसरों के धन को मिट्टी के ढेले के समान समझो।

आज भी भारतवर्ष के जिन पहाड़ी प्रदेशों में वर्तमान विनाशकारी पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता नहीं पहुँची है, वहाँ वही प्राचीन वैदिक आदर्श देखा जा सकता है। अब भी भारतवर्ष में ऐसे स्थान हैं जहाँ घरों में ताले नहीं लगते, जहां चोरियाँ नहीं होतीं।

भारतवर्ष की यह आचार-परम्परा मैगस्थनीज के समय में ही बनी हो ऐसी बात नहीं है। भारतीयों का आचार तो सदा से उच्च रहा था। आज जब भी कहीं आदर्श राज्य की बात होती है तो लोग कहते हैं कि हम राम-राज्य स्थापित करना चाहते हैं। राम-राज्य में ऐसी क्या विशेषता थी ? यदि हम रामायण का अवलोकन करें तो हमें राम-राज्य की झलक मिल सकती है। परन्तु राम-राज्य के दृश्य से पूर्व आप महाराज दशरथ के राज्य का अवलोकन कीजिए—

तस्मिन् पुरवरे हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुताः ।
नरास्तुष्टा धनैः स्वैस्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः ॥
नाल्पसंनिचयः कश्चिदासीत् तस्मिन्पुरोत्तमे ।
कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान् ॥
कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित् ।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान् न च नास्तिकः ।
सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः ।
मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः ॥

---

* लालच मत करो, यह धन भला किसका है ?

नाकुण्डली नामुकटी नास्रग्वी नाल्पभोगवान्।
नामृष्टो न लिप्ताङ्गो नासुगन्धश्च विद्यते ॥
नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः ।
कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्तो न संकरः ॥
नाषडङ्गविदत्रास्ति नाव्रतो नासहस्रदः ।
न दीनः क्षिप्तचित्तो वा व्यथितो वापि कश्चनः ॥
दीर्घायुषो नराः सर्वे धर्मं सत्यं च संश्रिताः ।
सहिताः पुत्रपौत्रैश्च नित्यं स्त्रीभिः पुरोत्तमे ॥

—वा० रा० बाल० ६ । ६—१०, १२, १५, १८

उस पुरी (अयोध्या) में सभी मनुष्य प्रसन्न, धर्मात्मा, महाविद्वान्, अपने-अपने धन से सन्तुष्ट, अलोभी और सत्यवक्ता थे।

वहाँ कोई ऐसा गृहस्थी न था जो थोड़े संग्रह वाला हो (प्रत्येक के पास पर्याप्त धन था)। कोई ऐसा गृहस्थी नहीं था, जिसकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होती हो और कोई ऐसा घर नहीं था जो गौ, अवश्य और धन-धान्य से भरपूर न हो।

अयोध्या में कोई पुरुष ऐसा न था जो कामासक्त हो, कोई व्यक्ति ऐसा न था जो कंजूस हो, दान न देता हो। क्रूर, मूर्ख और नास्तिक (ईश्वर, वेद और पुनर्जन्म में विश्वास न रखने वाला) व्यक्ति तो अयोध्या में कोई दिखाई ही न देता था।

सभी स्त्री-पुरुष धर्मात्मा, इन्द्रियों को वश में रखने वाले, सदा प्रसन्न रहने वाले और सदाचारयुक्त महर्षियों के समान निर्मल थे।

अयोध्या में कोई भी व्यक्ति ऐसा न था जो कानों में कुण्डल, सिर पर मुकुट और गले में माला धारण न करता हो। अल्पभोगी, मैले अंगों वाला, चन्दन, इत्र, तैल, फुलैल न लगाने वाला भी वहाँ कोई नहीं था।

अयोध्या में कोई मनुष्य ऐसा न था जो प्रतिदिन अग्निहोत्र न करता हो, जो क्षुद्र हृदय हो। कोई चोर नहीं था और न ही कोई वर्णसंकर था।

अयोध्या में कोई ऐसा व्यक्ति भी नहीं था जो छह अंगों (शिक्षा, कल्प, ज्योतिष, व्याकरण, निरुक्त और छन्द) सहित वेदों को न जानता हो। जो उत्तम व्रतों से रहित हो, जो महाविद्वान् न हो, जो निर्धन हो, जिसे शारीरिक या मानसिक पीड़ा हो, ऐसा भी कोई न था।

अयोध्या के सभी निवासी दीर्घजीवी, धर्म और सत्य का आश्रय लेने वाले, पुत्र, पौत्र और स्त्रियों सहित उस नगर में रहते थे।

यह है महाराज दशरथ का राज्य। अब आप राम-राज्य की छटा देखिए। परन्तु ठहरिए, राम-राज्य की छटा देखने से पूर्व आप मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के जीवन की एक-दो घटनाओं का अवलोकन कीजिए—

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम जब पिताजी से वनों की ओर प्रस्थान करने की आज्ञा लेने के लिए उनके पास पहुँचे तो उन्होंने श्रीराम से कहा—

अहं राघव कैकेय्या वरदानेन मोहितः ।
अयोध्यायां त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्य माम् ॥

—वा० रा० अयो० ३४ । २६

हे राम ! मैं कैकेयी को वरदान देकर उसमें फँस गया हूँ। तुम मुझे गिरफ्तार करके जेल में डालकर अयोध्या के राजा बनों।

पिताजी की ऐसी आज्ञा सुन श्रीराम ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया--

भवान् वर्षसहस्राय पृथिव्या नृपते पति:।
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि न मे राजस्य कांक्षिता ॥

—वा० रा० अयो० ३४ । २८

पिताजी ! आप सहस्रों वर्ष तक राजा बनकर पृथिवी पर शासन करें। मैं तो अब वन में जाकर ही निवास करूँगा, मुझे राज्य की आकांक्षा नहीं है।

यह है भारतीय संस्कृति की मुंह बोलती तस्वीर ! अब एक अन्य चित्र भी देखिए—

मुगल सम्राट् औरंगजेब ने दिल्ली का राज्य हथियाने के लिए अपने भाइयों की नृशंस हत्या की और अपने पिता को जेल में डाल दिया। जेल में भी उसे अनेक कष्ट दिये। इस घटना का उल्लेख सभी इतिहासकारों ने किया है। आकिल खां ने अपने ग्रन्थ "वाकआत आलमगीरी" में इस घटना का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है और शाहजहाँ का अपने पुत्र के नाम एक पत्र भी उद्धृत किया है, जिसमें उसने लिखा था—

ऐ पिसर तू अजब मुसलमानी,
कि जिन्दा जानम ब आब तरसानी।
आफ़रीवाद हिन्दुवान सद बार,
मे देहंद पिदरे मुर्दारा वा दाइम आब ॥

ऐ पुत्र ! तू विचित्र मुसलमान है जो अपने जीवित पिता को पानी के लिए भी तरसा रहा है। शत-शत वार प्रशंसनीय हैं वे हिन्दु, जो अपने मृत पिता को भी जल देते हैं।

यह घटना उस समय की है जब भारतवर्ष में वेद-विरुद्ध मृतक-श्राद्ध की कुप्रथा आरम्भ हो गई थी। इस घटना के इतने भाग से सहमत न होते हुए भी एक बात यहाँ स्पष्ट है कि आर्यों के आचार-विचार और व्यवहार की विदेशियों ने भी, अन्य मतावलम्बियों ने भी प्रशंसा की है।

श्रीराम के जीवन की एक अन्य घटना का अवलोकन कीजिए। श्रीराम और लक्ष्मण चित्रकूट में बैठे हुए वार्तालाप में संलग्न हैं। लक्ष्मण जी भाई भरत की प्रशंसा करते हुए कहते हैं--

"हे राम ! राज्य के सम्पूर्ण सुखों को तिलाञ्जलि देकर भरत भी आप ही के समान तप कर रहे हैं। वह भूमि पर सोता है। प्रातः उठकर नदी पर शीतल जल से स्नान करता है। बचपन में अनन्त सुखों में लालन-पालन होने पर भी पता नहीं वह इन कष्टों को किस प्रकार सहन करता होगा ? अपने तप के द्वारा भरत ने स्वर्ग=सुख विशेष प्राप्त कर लिया है इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। संसार में जो यह कहावत प्रचलित है कि "मनुष्य में पिता का स्वभाव नहीं आता अपितु माता के गुण ही आते हैं*" भरतजी ने इस कहावत

* रामायण के श्लोक के आधार पर ही यह कहावत बनी प्रतीत होती है—

को झूठा करके दिखा दिया परन्तु—

भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः ।
कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी ।।

—वा० रा० अरण्य० १६ । ३५

जिसका पति महाराज दशरथ जैसा हो, जिसका पुत्र साधु भरत जैसा हो, वह माता कैकेयी किस प्रकार ऐसे क्रूर स्वभाव की हुई ?

मर्यादा-पुरुषोत्तम राम लक्ष्मण द्वारा की गई कैकेयी की इस निन्दा को सहन न कर सके । अतः वे तुरन्त लक्ष्मणजी से बोले—

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन ।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु ।।

—वा० रा० अरण्य० १६ । ३७

हे भाई लक्ष्मण ! तुम मंझली माता कैकेयी की निन्दा मत करो ; तुम तो इक्ष्वाकुनाथ भरत की ही चर्चा करो ।

यह है श्रीराम का अपनी विमाता के प्रति व्यवहार !

श्रीराम के चरित्र का जाज्वल्यमान चित्र उस समय हमारी आँखों के समक्ष साकार हो उठता है, जब हमें मन्थरा के प्रति श्रीराम के विचारों का ज्ञान होता है ।

जब श्रीराम वनों में चले गये और भरत तथा शत्रुघ्न ननिहाल से लौट कर आये तो उन्हें बिना प्रयास के ही इतने बड़े राज्य के मिलने की प्रसन्नता नहीं हुई । शत्रुघ्न को तो मन्थरा को देखकर इतना क्रोध आया कि वे उसको बालों से पकड़कर घसीटने लगे । इतना ही नहीं, वे तो उसका काम तमाम करने पर उतारू हो गये । ऐसी भयंकर परिस्थिति देख भरतजी ने कहा—

इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः ।
त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम् ।।

वा० रा० अयो० ७८।२३

जब श्रीराम को इस कुब्जा के मारे जाने का समाचार मिलेगा तो वे धर्मात्मा तुझसे और मुझसे बोलना तक छोड़ देंगे ।

यह है श्रीराम के आदर्श-जीवन की अनुपम झाँकी !

श्रीराम के जीवन के कुछ दृश्यों के पश्चात् अब आप रामराज्य का भी दर्शन कीजिए । महर्षि वाल्मीकि ने रामराज्य का चित्र यूँ उपस्थित किया है ।

माँ पै पूत पिता पै घोड़ा ।
बहुत नहीं तो थोड़ा-थोड़ा ।।

न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम् ।
न व्याधिजं भयं चासीद् रामे राज्यं प्रशासति ।।
निर्दस्युरभवल्लोको नानार्थं [illegible] ।
न च स्म वृद्धा बालानां प्रेत[illegible] ।।
सर्वं मुदितमेवासीत् सर्वो धर्मपरोऽभवत् ।
राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन् परस्परम् ।।

नित्यमूला नित्यफलास्तरवस्तत्र पुष्पिताः ।
कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः ।।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा लोभविवर्जिताः ।
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वरैव कर्मभिः ।

—वा० रा० युद्ध० १२८ । ९८-१००, १०३, १०४

जब तक श्रीराम ने राज्य किया तब तक न तो कोई स्त्री विधवा हुई, न किसी व्यक्ति को रोग ने सताया और न किसीको साँप ने काटा ।

राम-राज्य में डाकू और चोरों का भय नहीं था, दूसरे के धन को लेना तो दूर, कोई छूता तक नहीं था । वृद्ध बालकों का प्रेत कार्य नहीं करते थे अर्थात् बालमृत्यु नहीं होती थी ।

राम-राज्य में सभी लोग सदा प्रसन्न और धर्म-कृत्यों में तत्पर रहते थे । 'श्रीराम उदास होंगे' ऐसा सोचकर किसीको कष्ट न देते थे ।

राम-राज्य में कन्दमूल खूब होते थे । वृक्ष सदा फलते और फूलते रहते थे । यथासमय वृष्टि होती थी और सुखस्पर्शी वायु चला करती थी ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कोई भी लोभी न था । सब लोग अपना-अपना कार्य करते हुए सन्तुष्ट रहा करते थे ।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने राम-राज्य का वर्णन इस प्रकार किया है—

दैहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज्य नहि काहुहि व्यापा ।
सब नर करहिं परस्पर प्रीति, चलहिं स्वधर्म निरत-श्रुति नीती ।।
अल्पमृत्यु नहि कवनिउ पीरा, सब सुन्दर सब बिरुज शरीरा ।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना, नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना ।

महाराज दशरथ और श्रीराम की आदर्श राज्य-व्यवस्था आगे भी पर्याप्त समय तक चलती रही । महाराज अश्वपति ने अपने राज्य के सम्बन्ध में गर्व-पूर्वक घोषणा की थी—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः ।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ।।

—छान्दोग्य उप० ५।११।५

मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है, कोई कंजूस नहीं है, कोई शराबी नहीं है, कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो प्रतिदिन अग्निहोत्र न करता हो । कोई मूर्ख नहीं है, कोई व्यभिचारी पुरुष नहीं है फिर भला व्यभिचारिणी स्त्री तो हो ही कैसे सकती है ?

राज्य की इस श्रेष्ठ व्यवस्था का निर्माण होता था मन्त्रियों के द्वारा । भारत के मन्त्री कैसे होते थे ? इसका सर्वश्रेठ उदाहरण हमें 'मुद्रा-राक्षस' नाटक में प्राप्त होता है । आइए, सम्राट् चन्द्रगुप्त के प्रधानमन्त्री आचार्य चाणक्य की कुटी के दर्शन कीजिए—

उपलशकलमेतद् भेदकं गोमयानाम्,
बटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तूपमेतत् ।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभिः,
विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम् ।। —३।१५

एक ओर गोबर के उपलों को तोड़ने के लिए पत्थर का टुकड़ा रखा है, दूसरी ओर शिष्यों द्वारा लाई हुई कुशाओं का ढेर पड़ा है। पुरानी दीवार की छत पर जलाने के लिए लकड़ियाँ सुखाई गई हैं, जिनसे छत का सिरा झुक गया है। पाठकगण ! सारे संसार के इतिहास को देख जाइए, मिलेगा कहीं ऐसा निर्लोभी ब्राह्मण ?

यह तो हुआ प्राचीन प्रधानमन्त्री का चित्रण। अब तनिक इसकी तुलना आज के मन्त्रियों से कीजिए। क्या ठाठ-बाट हैं आज के मन्त्रियों के। देखिए—

दिशि दिशि बहुकारा वाहकै: सर्वयुक्ता :
क्व हि रक्षकवर्गश्च मालासिहा क्वचिच्च।
क्वचिदपि कुक्कुटाण्डं मांसपात्रं क्वचिच्च,
सकल-सचिव-गेहे वारुणी-धूम्रपानम् ॥

चारों ओर ड्राइवरों से युक्त कारें खड़ी हुई हैं। कहीं रक्षक समूह (Body Guards) खड़े हुए हैं तो कहीं मालासिन्हा (अभिनेत्रियाँ) घेरे खड़ी हैं। कहीं मुर्गी के अण्डे हैं तो कहीं मांस-पात्र पड़े हुए हैं। सभी मन्त्रियों के घरों में धूम्रपान और शराब के दौर चलते हैं।

जिस देश के मन्त्री इस प्रकार के भोग-विलास प्रिय हों वह देश रसातल को नहीं जाएगा तो और कहाँ जाएगा। अस्तु ! मैं पुन: अपने विषय की ओर लौटता हूँ।

भारत की महत्ता के सन्दर्भ में यदि भारतीय नारी की चर्चा न की जाए तो यह सन्दर्भ अधूरा ही रह जाएगा। अत: यहाँ मैं भारतीय नारी की पवित्रता, शील और सतीत्व के सम्बन्ध में भी कुछ प्रकाश डालना आवश्यक समझता हूँ। भारतीय नारी का जो शील और सदाचार रहा है वह संसार में अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता।

जिस समय रावण पञ्चवटी में सीता के समक्ष आकर, उसे अपने राज्य का प्रलोभन देकर अपनी पटरानी बनाना चाहता है तो सीता उसे फटकारते हुए कहती है—

त्वं पुनर्जम्बूक: सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम्।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुम् दित्यस्य प्रभा यथा ॥

—वा० रा० अरण्य० ४७।३७

अरे दुष्ट ! तू गीदड़ होकर मुझ सिंहनी को प्राप्त करना चाहता है। स्मरण रख, तू मुझे उसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकता जैसे कोई सूर्य की प्रभा को नहीं छू सकता।

क्या संसार के साहित्य में गान्धारी जैसा उदाहरण मिल सकता है जिसने अपने पति के नेत्रहीन होने के कारण जीवन भर के लिए अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली।

क्या संसार के इतिहास में राजपूत रमणियों का आदर्श कहीं मिल सकता है ? लीजिए, पढ़िए राजपूत रमणियों की गौरव-गाथा के दो स्वर्णिम एवं उज्ज्वल पृष्ठ—

राजस्थान की राजकुमारी दुर्गा का विवाह हो चुका था। उसे विदाई देने

के लिए शहनाइयाँ बज रही थीं। डोली को भेजने की तैयारियाँ पूर्ण हो चुकी थीं। वर महोदय प्रणाम करने के लिए रनिवास में पहुँचे तो उन्होंने हँसी-मजाक में बड़ी साली की कलाई पर हाथ रख दिया। साली को अपने बहनोई की आँखों में शरारत-सी दृष्टिगोचर हुई। बस फिर क्या था, सिंहनी की आँखों में खून उतर आया। राजपूती आन, मान और मर्यादा अपने निकट सम्बन्धी को भी क्षमा करने के लिए तैयार नहीं थी। उसने अपनी कलाई को कटार के एक झटके में ही यह कहकर काट दिया कि जिस कलाई का दूसरे द्वारा स्पर्श हो गया, वह मेरे पति के स्पर्श के योग्य नहीं रही।

उधर डोली विदा हुई, परन्तु दुल्हा को उसकी शरारत का दण्ड देने वाले भी उसके पीछे चल पड़े। शहर से थोड़ी दूर पर डोली रोक दी गई। अब दुल्हा के हाथ काटने की बारी थी। बड़े साढ़ू ने छोटे को ललकारा और थोड़ी ही देर में उसकी लाश लोटने लगी। साढ़ू जब हाँपता और काँपता डोली की ओर बढ़ा और पर्दा उठाया तो दुर्गावती ने कहा—"तुमने बसने से पूर्व ही मेरा संसार उजाड़ दिया परन्तु राजपूती मर्यादा को अक्षुण्ण रखने में मेरा भी उतना ही भाग है जितना मेरी बहन ने दिखाया है।"

भारतीय गगन की देदीप्यमान तारिका पद्मिनी की गौरव-गाथा से कौन भारतीय अपरिचित होगा? अलाउद्दीन खिल्जी ने पद्मिनी के अनुपम सौंदर्य की कथा सुनकर सन् १३०१ में चित्तौड़ पर आक्रमण किया। वीर राजपूतों ने डटकर मुकाबला किया। कई मास तक दुर्ग को घेरे रहने के पश्चात् भी जब खिल्जी को विजय की कोई आशा दृष्टिगोचर नहीं हुई तो उसने छल-कपट से काम लेने का निश्चय किया। खिल्जी ने महाराज भीमसिंह को सन्धि की बातचीत के लिए निमन्त्रण भेजा और जब भीमसिंह खिल्जी के कैम्प में पहुँचे तो उन्हें बन्दी बना लिया गया। रिहाई के लिए यह शर्त रखी गई कि शीशे में पद्मिनी का मुख दिखाने का प्रबन्ध किया जाये। पद्मिनी को पता लगा तो वह सात सौ डोलियों में ३५०० राजपूत जवानों को लेकर अलाउद्दीन के डेरे में पहुँची और वहाँ भीषण मारकाट कर अपने पति को अलाउद्दीन की कैद से छुड़ा लाई। खिल्जी को दुम दबाकर भागना पड़ा।

इस पराजय से खिसयाना होकर खिल्जी ने पुनः आक्रमण करने के लिए जोर-शोर से तैयारियाँ आरम्भ कर दीं। एक वर्ष के पश्चात् भारी सेना लेकर फिर आक्रमण किया। चित्तौड़ में मुकाबले के लिए सेना कम थी। राजपूत वीर केसरिया बाना पहनकर अन्तिम श्वास तक लड़े और लड़ते-लड़ते शहीद हो गये। उधर पद्मिनी ने चिताएँ तैयार कराईं। चौदह सहस्र राजपूत रमणियाँ आग में कूद कर भस्म हो गईं।

जब अलाउद्दीन ने पद्मिनी को पाने के लिए दुर्ग (किले) में प्रवेश किया तो देखा कि चिता धू-धू करके जल रही है। इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने पर उसने देखा कि एक वृद्धा बैठी हुई है। खिल्जी ने आगे बढ़कर वृद्धा से पूछा—"पद्मिनी कहाँ है?" वृद्धा ने चिता की ओर संकेत करके बताया कि वह तो समाप्त हो चुकी परन्तु तुम्हारे लिए एक संदेश छोड़ गई है। खिल्जी ने कहा—"जल्दी बता उसने मेरे लिए क्या सन्देश दिया था?" वृद्धा बोली—पद्मिनी ने कहा था—

ओ पापी ! तू इस सूरत को पा नहीं सकता।
यह भोजन शेर का है, कुत्ता खा नहीं सकता ॥

यह कहकर वृद्धा भी चिता में कूद पड़ी।

प्रिय पाठकवृन्द ! अब तक हमने भारत की महत्ता और गौरव को प्रकट करने वाले कुछ तथ्य आपके समक्ष प्रस्तुत किये हैं। भारतवर्ष की इन गौरवमयी परम्पराओं को, भारत की महत्ता को, भारत की सभ्यता और संस्कृति को मिटाने के लिए अनेक प्रयत्न हुए। हूण यहाँ आये, उन्होंने भारत पर आक्रमण किये, परन्तु मुंह की खाकर वापस गये। शकों ने भी भारत की ओर दृष्टि उठाई, परन्तु उन्हें भी पराजय का मुख देखना पड़ा। आज हमारी भारत सरकार ने वैदिक सृष्टि संवत् को नहीं अपनाया, विक्रम संवत् को भी तिलांजलि देकर उन्होंने पराजित शकों का संवत् अपनाकर अपनी पराजित मनोवृत्ति को द्योतित किया है। शोक ! महाशोक !!

भारतीय गौरव और मर्यादा को नष्ट करने के लिए चंगेज खाँ, तैमूर लंग, नादिरशाह, अहमदशाह अब्दाली ने आक्रमण किये, किन्तु वे भी सफल नहीं हुए। औरंगजेब की तानाशाही और तलवार की धार भी भारतीय संस्कृति और सभ्यता को नष्ट करने में असमर्थ रही। कौन से अत्याचार थे जो औरंगजेब के समय में हिन्दुओं पर नहीं ढाये गये। हिन्दुओं की चोटी और यज्ञोपवीतों को काट-काटकर हम्माम गर्म किये गये, परन्तु औरंगजेब अपने मिशन में असफल रहा।

औरंगजेब के समय में तो आर्यों पर भीषण अत्याचार किये ही गये थे परन्तु उसके पश्चात् भी आर्यों को जो कष्ट, पीड़ाएँ और यातनाएँ दी गईं वे कम लोमहर्षक नहीं है। यहाँ हम लेवल एक घटना का उल्लेख करते हैं।

फर्रुखसियर ने कूटनीति से काम लेकर सिखों को बन्दा वैरागी के विरुद्ध भड़का दिया। सिखों ने वैरागी का साथ छोड़ दिया। अब क्या था फर्रुखसियर ने ३०,००० सेना लेकर वैरागी को गुरुदासपुर में घेर लिया। वैरागी की सेना की रसद बन्द कर दी गई। सिख मुसलमानों से जा मिले। वैरागी ने विवश होकर आत्म-समर्पण कर दिया। उसे दिल्ली में लाया गया और उसके माँस को गर्म चिमटों से नोचने का आदेश दिया गया।

जिस समय दिल्ली के चाँदनी चौक बाजार में फव्वारे के निकट फर्रुखसियर के आदेशानुसार लोहे की गर्म-गर्म सलाखों से बन्दा वैरागी का मांस नोचा जा रहा था तो वैरागी अपने शरीर से बहने वाले खून को अपने दोनों हाथों में लेकर अपने मुखमण्डल पर लगा रहे थे। जब पास खड़े लोगों ने इसका कारण पूछा तो वैरागी ने हँसते हुए कहा, "मरते समय एक बलिदानी के मुखमण्डल पर पीलापन नहीं, अपितु एक ओज, तेज और लालिमा होनी चाहिए। शरीर से रक्त अधिक निकल जाने से कहीं मेरा मुखमण्डल पीला न पड़ गया हो, इसलिए मैं इस रक्त को अपने मुखमण्डल पर लगा रहा हूँ।"

धन्य है, वीर वैरागी! तुझे धन्य है ! तेरा त्याग और बलिदान अनुपम था।

मुसलमानों के ऐसे भीषण अत्याचार भी आर्यजाति को, आर्य-सभ्यता और संस्कृति को नष्ट करने में सर्वथा असफल रहे। यह बात मैं नहीं कहता, स्वयं मुसलमानों ने इस बात को स्वीकार किया है। मुसलमानों का वह

का फल जो एक हाथ में कुरान और दूसरे हाथ में तलवार लेकर जहाँ गया, जिस स्थान पर गया, वहीं मार-काट मचाता हुआ, वहाँ के लोगों को मुसलमान बनाने में सफल हुआ, परन्तु भारत में उसकी दाल न गली। ख्वाजा अलताफ हुसेन हाली ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति के समक्ष अपनी पराजय को निम्न शब्दों में स्वीकार किया है—

वो दीने हिजाजी का बेबाक बेड़ा।
निशाँ जिसका अक्साथे आलम[1] में पहुँचा॥
मुजाहिम[2] हुआ कोई खतरा न जिसका।
न उम्माँ में ठठका न कुल्जुम[3] में झिजका॥
किये पै सिपुर[4] जिसने सातों समुन्दर।
वो डूबा दहाने में गंगा के आकर॥

जिस भारत की सभ्यता और संस्कृति को नादिरशाह और तैमूर लंग की मार-काट और लूटमार ध्वस्त न कर सकी, जिस भारत की आर्यजाति को औरंगजेब की तलवार अपने अधीन न कर सकी, जिस भारतीय मान और मर्यादा को संसार की कोई भी शक्ति पददलित नहीं कर सकी आज उसी भारत की प्राचीन परम्पराएँ नष्ट एवं ध्वस्त होती हुई प्रतीत हो रही हैं। प्रश्न उपस्थित होता है, आखिर ऐसा क्यों हो रहा है? भारतीय इतिहास का सिंहावलोकन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत की अवनति का एक नहीं अनेक कारण हैं। यहाँ हम प्रमुख सात कारणों का उल्लेख करेंगे।

१ मूर्तिपूजा

भारत की अवनति का मूल और सबसे प्रमुख कारण है 'मूर्तिपूजा'। इस विषय में हम श्री बाबू देवेन्द्रनाथ जी मुखोपाध्याय के स्वर-में-स्वर मिलाकर कहना चाहते हैं—

"मूर्तिपूजा ने भारत के अकल्याण की जो सामग्री एकत्रित की है, उसे लेखनी लिखने में असमर्थ है। मूर्तिपूजा ने भारतवासियों का जो अनिष्ट किया है, उसे प्रकट करने में हमारी अपूर्ण विकसित भाव-प्रकाशक शक्ति अशक्त है। जो धर्म सम्पूर्ण भाव से आन्तरिक वा आध्यात्मिक था उसे सम्पूर्ण रूप से बाह्य किसने बनाया?—मूर्तिपूजा ने। काम आदि शत्रुओं के दमन और वैराग्य के साधन के बदले तिलक और त्रिपुण्ड किसने धारण कराया? मूर्तिपूजा ने। ईश्वर-भक्ति, ईश्वर-प्रीति, परोपकार और स्वार्थ त्याग के बदले अंग में गोपी चन्दन का लेपन, मुख से गंगालहरी का उच्चारण, कण्ठ में अनेक प्रकार की मालाओं का धारण किसने सिखाया? मूर्तिपूजा ने। संयम, शुद्धता, चित्त की एकाग्रता आदि के साथ में त्रिसीमा (धारणा, ध्यान, समाधि) में प्रवेश न कर केवल दिन विशेष पर खाद्य विशेष का सेवन न करना, प्रातःकाल, मध्याह्न

१. समस्त संसार २. हस्तक्षेप ३. दरिया, समुद्र ४. पददलित करना।

और सायंकाल में अलग-अलग वस्त्रों के पहनने का आयोजन और तिथि विशेष पर मनुष्य विशेष का मुख देखना तो दूर रहा, उसकी छाया तक का स्पर्श न करना, यह सब किसने सिखाया ? **मूर्तिपूजा ने** । हिन्दुओं के चित्त से स्वाधीन चिन्तन की शक्ति किसने हरण की?—**मूर्तिपूजा ने** । हिन्दुओं के मनोबल, वीर्य, उदारता और सत्साहस को किसने दूर किया ? **मूर्तिपूजा ने** । प्रेम, समवेदना और परदु:खानुभूति के बदले घोरतर स्वार्थपरता को हिन्दुओं के चरित्र में कौन लाई ?—**मूर्तिपूजा ने** । हिन्दुओं को अमानुष अपितु पशुओं से भी अधम किसने बनाया ?—**मूर्तिपूजा** । आर्यावर्त्त के सैकड़ों टुकड़े किसने किये ? —**मूर्तिपूजा ने** । आर्यजाति को सैकड़ों टुकड़ों में किसने बांटा ?—**मूर्तिपूजा ने** । इस देश को सैकड़ों वर्षों से पराधीनता की लोहमयी शृंखला में किसने जकड़े रक्खा ? मूर्तिपूजा ने । कौनसा अनर्थ है, जो मूर्तिपूजा द्वारा सम्पादित नहीं हुआ ? सच्ची बात तो यह है कि आप चाहे हाईकोर्ट के न्यायाधीश हों चाहे गवर्नर (लाट) साहब के प्रधानतर सचिव, आप बुद्धि में बृहस्पति के तुल्य हों चाहे वाग्मिता में सिसरो (Cicero) और गेटे (Goethe) से भी बढ़कर, आप अपने देश में पूजित हों या विदेश में आपकी ख्याति का डंका बजा हो, आप सरकारी कानून को पढ़कर सब प्रकार से अकार्य और कुकार्य को आश्रय देने वाले अटर्नी (Attorney) कुल के उज्ज्वलतम रत्न हों चाहें मिष्टभाषी, मिथ्योपजीवी सर्वप्रधान, स्मार्त (वकील), परन्तु यदि किसी अंश में भी आप मूर्तिपूजा का समर्थन करेंगे, तो हमें यह कहने में अणुमात्र भी संकोच नहीं होगा कि आप किसी अंश में भी भारत के मित्र नहीं हो सकते, क्योंकि मूर्तिपूजा भारतवर्ष के सारे अनिष्टों का मूल है ।"

—महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवनचरित्र, भूमिका पृष्ठ ७, ८

प्रसिद्ध विद्वान् डा० रामकृष्णगोपाल भाँडारकर 'जो प्रार्थनासमाज' के अग्र नायकों में एक थे, मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में एक स्थान पर लिखते हैं—

"अमुक देवता अथवा अमुक प्रतिमा को ही भज या उसकी शरण में जा यह कहना ठीक नहीं ! केवल प्रतिमा को दृष्टि के सामने रखकर भजन-पूजन करने से अनेक अनिष्ट परिणाम होते हैं । प्रतिमा पुरुष की हो या स्त्री की सच्चे देवता के स्वरूप और महिमा का विस्मरण तो हो ही जाता है और उस देव के उपासक उसके ऊपर मनुष्य के क्रिया-कलाप का आरोपण कर बैठते हैं, देव यदि पुरुष हो तो उसके लिए पत्नी खोज लाते हैं, यदि देवता स्त्री हो तो उसके लिए पति की व्यवस्था की जाती है फिर उसके लिए मनुष्यों की-सी शय्या तैयार की जाती है । उपासक यदि तम्बाकू सेवी हो तो उसके पान सुपाड़ी तथा तम्बाकू की पीकदान की व्यवस्था देवगृह में की जाती है । इस प्रकार प्रभु की केवल विडम्बना ही की जाती है ।········ऐसे अनिष्टों का समावेश धर्म में न होने पाए, इसलिए धर्माचरण में मूर्तिपूजा को स्थान नहीं देना चाहिए ।"

—**बलमल्लाल मुरारका स्मुति ग्रन्थ, पृष्ठ ३७५ से उद्धत**

वेद वैदिक-संस्कृति के मूलाधार हैं, धर्म के आदि स्रोता और स्तम्भ हैं । यह डिण्डिम घोष के साथ कहा जा सकता है कि चारों वेदों में एक भी ऐसा

मन्त्र नहीं है जो मूर्तिपूजा का विधायक हो। चारों वेदों में कहीं भी ऐसा वर्णन नहीं है कि मनुष्यों को सोने, चांदी, लोहा, पीतल, ताँबे या काष्ठ की मूर्तियाँ बनानी चाहिएँ और उनके मुंह में लड्डू ठूंसने चाहिएँ, उनके ऊपर पंखा झलना चाहिए, उन पर जल चढ़ाना चाहिए। मूर्तिपूजा वेद विरुद्ध है और बहुत अर्वाचीन है।

संसार में जितने भी सुधारक, महापुरुष और सन्त हुए सभी ने मूर्तिपूजा का घोर खण्डन किया है। स्वामी शंकराचार्य ने अपनी पुस्तक 'परा-पूजा' में मूर्तिपूजा की धज्जियाँ उड़ाई हैं।

कबीरजी ने मूर्तिपूजा के विरुद्ध बहुत कुछ कहा है। एक स्थान पर वे कहते हैं—

मोकौ कहाँ ढूंढे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
न मैं देवल न मैं मस्जिद, न काबा कैलास में॥
खोजी होय तो तुरत मिलि हौं, पल भर की तलाश में।
कहें कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वांसो की स्वांस में॥

इसी प्रकार नानकजी, दादू, रैदास आदि सन्तों ने मूर्तिपूजा का घोर खण्डन किया है। दादूजी कहते हैं—

पत्थर पीवे धोई के पत्थर पूजे प्रान।
अन्तकाल पत्थर भये भव डूबे अज्ञान॥

आधुनिक युग में महर्षि दयानन्द मूर्तिपूजा के प्रबल विरोधी थे। वे बड़ी निर्भीकता से मूर्तिपूजा का खण्डन किया करते थे। इस विषय में पादरी जे० जे० लूकस ने, जिन्होंने सन् १८७० में फर्रुखाबाद में न केवल स्वामी जी के व्याख्यान ही सुने थे अपितु उनसे भेंट की थी, देवेन्द्र बाबू को जो विवरण दिया था, वह पठनीय है। लूकस महोदय ने बताया था कि "वह मूर्तिपूजा के विरुद्ध इतने बड़े और इतने स्पष्ट विश्वास के साथ बोलते थे कि मुझे फर्रुखाबाद की जनता की ओर से उनका हार्दिक स्वागत किये जाने पर आश्चर्य हुआ। मुझे उनका यह कथन स्मरण है कि जब मैंने उनसे कहा कि यदि आप को तोप के मुंह पर रखकर आपसे कहा जाए कि यदि तुम मूर्ति को मस्तक नहीं नवाओगे तो तुम्हें तोप से उड़ा दिया जाएगा, तो आप क्या कहोगे? स्वामी जी ने उत्तर दिया था कि मैं कहूँगा कि "उड़ा दो।"

जब चूहे की घटना से महर्षि की आस्था मूर्तिपूजा से हट गई तो भय और प्रलोभन आदि संसार की कोई शक्ति उन्हें पुनः मूर्तिपूजा में प्रवृत्त न करा सकी। महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में मूर्तिपूजा की कैसी करारी एवं युक्तियुक्त समालोचना की है तनिक अवलोकन कीजिए—

"जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना अन्यत्र न करना, यह ऐसी बात है कि जैसी चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ाके एक छोटी-सी झोंपड़ी का स्वामी मानना। देखो! यह कितना बड़ा अपमान है। वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो। जब व्यापक मानते हो तो वाटिका में से पुष्प-पत्र तोड़के क्यों

चढ़ाते ? चन्दन घिसके क्यों लगाते हो ? घण्टा, घड़ियाल, झाँझ, पखाजों को लड़की से कूटना-पीटना क्यों करते हो ? तुम्हारे हाथों में है, क्यों जोड़ते हो ? शिर में है, क्यों नवाते हो ? अन्न-जलादि में है क्यों नैवेद्य धरते ? जल में है, स्नान क्यों कराते ? क्योंकि उन सब पदार्थों में परमात्मा व्यापक है। और तुम व्यापक की पूजा करते हो वा व्याप्य की। जो व्यापक की करते हो तो पाषाण लकड़ी आदि पर चन्दन पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो ? और जो व्याप्य की करते हो तो हम परमेश्वर की पूजा करते हैं, ऐसा झूठ क्यों बोलते हो। हम पाषाणादि के पुजारी हैं, ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते ?"

—सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास

आगे चलकर मूर्तिपूजा के दोषों को महर्षि ने इस प्रकार गिनाया है—

"साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसको मन झट ग्रहण करके उसीके एक-एक अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है। और निराकार परमात्मा के ग्रहण में यावत् सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने से चञ्चल भी नहीं रहता, किन्तु उसीके गुण, कर्म, स्वभाव का विचार करता-करता आनन्द में मग्न होकर स्थिर हो जाता है। और जो साकार में स्थिर होता तो सब जगत् का मन स्थिर हो जाता क्योंकि जगत् में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्रादि साकार में फँसा रहता है, परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता जब तक निराकार में न लगावें, क्योंकि निरवयव होने से उसमें मन स्थिर हो जाता है। इसलिए मूर्तिपूजा करना अधर्म है।

दूसरा—उसमें करोड़ों रुपये मन्दिर में व्यय करके दरिद्र होते हैं और उसमें प्रमाद होता है।

तीसरा—स्त्री-पुरुषों का मन्दिर में मेला होने से व्यभिचार, लड़ाई, बखेड़ा और रोगादि उत्पन्न होते हैं।

चौथा—उसीको धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति का साधन मानके पुरुषार्थ रहित होकर मनुष्य जन्म व्यर्थ गंवाता है।

पाँचवाँ—नाना प्रकार की विरुद्ध स्वरूप, नाम, चरित्रयुक्त मूर्तियों के पुजारियों का ऐक्यमत नष्ट होके विरुद्ध मत में चलकर आपस में फूट बढ़ाके देश का नाश करते हैं।

छठा—उसीके भरोसे में शत्रु की पराजय और अपनी विजय मान बैठे रहते हैं। उनकी पराजय होकर राज्य, स्वातन्त्र्य और धन का सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होता है और आप पराधीन भठियारे के टट्टू और कुम्हार के गधे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेकविध दुःख पाते हैं।

सातवाँ—जब कोई किसीको कहे कि हम तेरे बैठने के आसन वा नाम पर पत्थर धरें तो जैसे वह उस पर क्रोधित होकर मारता व गाली प्रदान करता है, वैसे ही जो परमेश्वर के उपासना के स्थान हृदय और नाम पर पाषाणादि मूर्ति धरते हैं, उन दुष्ट बुद्धिवालों का सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करे ?

आठवाँ—भ्रान्त होकर मन्दिर-मन्दिर, देश-देशान्तर में घूमते-घूमते, दुःख पाते, धर्म, संसार और परमार्थ का काम नष्ट करते, चोर आदि से पीड़ित होते, ठगों से ठगाते रहते हैं।

नवाँ—दुष्ट पुजारियों को धन देते हैं। वे उस धन को वेश्या, परस्त्री-गमन, मद्य, मांसाहार, लड़ाई, बखेड़ों में व्यय करते हैं, जिससे दाता का सुख का मूल नष्ट होकर दुःख होता है।

दशवाँ—माता-पिता आदि माननीयों का अपमान कर पाषाणादि मूर्तियों का मान करके कृतघ्न हो जाते हैं।

ग्यारहवाँ—उन मूर्तियों को कोई तोड़ डालता वा चोर ले जाता है, तब हा-हा करके रोते रहते हैं।

बारहवाँ—पूजारी परस्त्रियों के संग और पूजारिन पर-पुरुषों के संग से प्रायः दूषित होकर स्त्री पुरुष के प्रेम के आनन्द को हाथ से खो बैठते हैं।

तेरहवाँ—स्वामी सेवक की आज्ञा का पालन यथावत् न होने से परस्पर विरुद्ध भाव होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।

चौदहवाँ—जड़ का ध्यान करने वाले का आत्मा भी जड़-बुद्धि हो जाता है, क्योंकि ध्येय का जड़त्व धर्म अन्तःकरण द्वारा आत्मा में अवश्य आता है

पन्द्रहवाँ—परमेश्वर ने सुगन्धियुक्त पुष्पादि पदार्थ वायु, जल के दुर्गन्ध निवारण और आरोग्यता के लिए बनाये हैं। उनको पूजारीजी तोड़-ताड़कर न जाने उन पुष्पों की कितने दिन तक सुगन्धि आकाश में चढ़कर वायुजल की शुद्धि करता और पूर्ण सुगन्धि के समय तक उसका सुगन्ध होता, उसका नाश मध्य में ही कर देते हैं। पुष्पादि कीच के साथ मिल, सड़कर उल्टा दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं। क्या परमात्मा ने पत्थर पर चढ़ाने के लिए पुष्पादि सुगन्धित पदार्थ रचे हैं?

सोलहवाँ—पत्थर पर चढ़े पुष्प और अक्षत आदि सबका जल और मृत्तिका से संयोग होने से मोरी वा कुण्ड में आकर सड़के इतना उससे दुर्गन्ध आकाश में चढ़ता है कि जितना मनुष्य के मल का और सहस्रों जीव उसमें पड़ते, उसी में मरते और सड़ते हैं।

ऐसे-ऐसे अनेक मूर्तिपूजा के करने में दोष आते हैं। इसलिए सर्वथा पाषाणादि मूर्तिपूजा सज्जन लोगों को त्यक्तव्य है और जिन्होंने पाषाणमय मूर्ति की पूजा की है, करते हैं और करेंगे, वे पूर्वोक्त दोषों से न बचे, न बचते हैं और न बचेंगे।

—सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास

महर्षि दयानन्द द्वारा गिनाये गये मूर्तिपूजा के दोषों की व्याख्या की जाए तो उसके लिए एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की अपेक्षा होगी अतः हम उन सब पर कुछ न कहकर केवल छठे दोष के सम्बन्ध में कुछ लिखेंगे।

भारतवर्ष पराधीनता के पाश में जकड़ा गया और लगभग ७०० वर्ष तक मुसलमानों ने भारत पर राज्य किया। इसका कारण क्या था? क्या आर्य युद्ध कौशल या शरीरिक बल में किसीसे कम थे? बिल्कुल नहीं। प्रसिद्ध इतिहासकार बदाऊनी ने एक स्थान पर लिखा है—"हिन्दुओं के बराबर प्रतापशाली पठान और मुगलों में एक भी जाति विद्यमान नहीं है।" इतने वीर होते हुए भी हिन्दु पराजित क्यों हुए इसका कारण है मूर्तिपूजा। मूर्तिपूजा करते-करते भारतवासियों की बुद्धि ऐसी मलिन एवं जड़ हो गई थी कि लोगों में मूर्तियों द्वारा रक्षा, वरदान और अभिशाप का अन्धविश्वास घर कर गया

था। इतिहास इस बात का साक्षी है।

सन् ७१२ में हज्जाज ने मुहम्मद बिन कासिम को सिन्ध पर आक्रमण करने का आदेश दिया। उस समय मुहम्मद बिन कासिम की अवस्था केवल २० वर्ष की थी। वह ईरान और बिलोचिस्तान होता हुआ ६,००० सैनिक और तीन सहस्र ऊँटों को लेकर सिन्ध पर चढ़ आया। जब राजा दाहर को पता लगा तो उसने अल्लाफियों के सरदार मुहम्मद वारिस का उस सेना को सिन्ध की सीमा पर रोकने का आदेश दिया। मुहम्मद वारिस ने कहा कि शत्रु को सीमा पर रोकने की कोई आवश्यकता नहीं है, उसे राजधानी तक आने दो हम उनका काम तमाम कर देंगे। जब सेना सिन्ध में घुस आई तो दाहर ने मुहम्मद वारिस को फिर कहा कि हमने तुम्हारी प्राण-रक्षा की, तुम्हें शरण दी और अपनी सेना में भरती किया अब तुम हमारी ओर से युद्ध करो। इस पर उस नमकहराम कृतघ्न वारिस ने कहा—"आपने हमारे साथ जो उपकार किया है वह मैं जानता हूँ परन्तु चढ़ाई करने वाले मुसलमान हैं और हमारा मजहब (मत) मुसलमान को मुसलमान के साथ लड़ने की आज्ञा नहीं देता।" यह कहकर "अल्लाहोकबर" का नारा लगाता हुआ वह मुहम्मद बिन कासिम की सेना में जा मिला। इसके अतिरिक्त सिन्ध के जाट और मेड़ भी जो हिन्दुओं से असन्तुष्ट थे मुहम्मद बिन कासिम की सेना में जा मिले।

इस सब शक्ति को प्राप्त कर मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध के प्रसिद्ध नगर देवल पर आक्रमण किया। राजा दाहर ने तीस सहस्र सैनिकों सहित कासिम का डटकर मुकाबला किया। घमसान युद्ध हुआ। रणक्षेत्र लाशों से पट गया। शत्रु के छक्के छूट गये और घुटने टूट गये। कासिम का साहस जबाव दे गया। वह पीठ दिखा और सिर पर पैर रखकर भागने वाला था कि एक देशद्रोही नीच ब्राह्मण कासिम से जा मिला। उसने कहा कि यदि आप मेरी रक्षा करें और मुझे दक्षिणा दें तो मैं देवल की पराजय और आपकी विजय का उपाय बता सकता हूँ। कासिम बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला, "बहुत अच्छा।" तब ब्राह्मण ने उसे बताया कि सामने मन्दिर के शिखर पर जो ध्वज लगा हुआ है उसे गिरा दिया जाए तो हिन्दुओं की कमर टूट जाएगी, वे समझ लेंगे कि देवता अप्रसन्न हो गये हैं और युद्ध करना बन्द कर देंगे। कासिम ने कहा, "वहाँ तो कड़ा पहरा है, चिड़िया भी वहाँ पर नहीं मार सकती। ऐसी स्थिति में झण्डे को कैसे गिराया जा सकता है?" ब्राह्मण ने कहा, "यह कार्य तो मैं कर दूंगा। मैं इस मन्दिर का पूजारी हूँ। रात्रि में इस ध्वज को मैं गिरा दूंगा।"

प्रातःकाल जब दाहर की रण के लिए उद्यत सेना को मन्दिर की चोटी पर झण्डा दिखाई नहीं दिया तो उनका उत्साह और साहस मन्द हो गया। उन्होंने समझ लिया कि देवता अप्रसन्न हो गये हैं, अब हमारी पराजय निश्चित है। सेना निराश होकर भागने लगी। राजा दाहर घायल होकर गिर पड़ा। उसका सिर काटकर एक भाले पर टाँग दिया गया। यह दृश्य देख सारी सेना भाग खड़ी हुई। देवल पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। नगर को लूटा गया। सहस्रों स्त्री-पुरुषों को मृत्यु के घाट उतारा गया। उस मन्दिर को तोड़कर उसके स्थान पर मस्जिद बनाई गई।

उसी नीच ब्राह्मण ने कासिम के पास आकर कहा, "देखिए, मैंने आपकी विजय कराई है। यदि आप मुझे इच्छानुसार उत्तम भोजन कराएँ तो मैं आपका एक गुप्त खजाने का पता भी बता सकता हूँ।" कासिम ने उसे खूब भोजन कराया। तब वह पुजारी उसे एक ऐसे तहखाने में ले गया जिसमें राज्य का खजाना सुरक्षित था। श्री गणपतराय अग्रवाल के अनुसार उस खजाने में ताँबे की चालीस डेग रखी थीं जिसमें १७,२०० मन सोना भरा था। यदि सोने का मूल्य सौ रुपये तोला भी लगाया जाय तो आजकल के हिसाब से ५५ अरब रुपये से भी अधिक मूल्य होगा। इन डेगों के अतिरिक्त सोने की बनी हुई ६००० ठोस मूर्तियाँ थीं जिनमें सबसे बड़ी मूर्ति का वजन ३० मन था। हीरा, पन्ना, माणिक और मोती तो इतने थे कि उन्हें कई ऊँटों पर लादकर ले जाया गया।

यह है मूर्तिपूजा का भीषण अभिशाप। यदि हिन्दुओं को मूर्तियों में अन्ध-विश्वास न होता तो भारत को ये दुर्दिन न देखने पड़ते। अन्त में हम महर्षि दयानन्द के शब्दों में इतना ही कहना चाहते हैं—"मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं, किन्तु एक बड़ी खाई है, जिसमें गिरकर [मनुष्य] चकनाचूर हो जाता है।"

ऐ अविद्या और अन्धकार की निद्रा में सोने वाले भारतवासियो! बहुत सो चुके, बहुत लुट चुके। अब तो होश में आओ। इस पाखण्ड को तिलांजलि देकर वेदोक्त विधि से प्रातः सायं संध्या और यज्ञ करो। उसीसे कल्याण होगा और भारत पुनः अपने पूर्व गौरव को प्राप्त करेगा।

२ फलित-ज्योतिष

भारतवर्ष को अवनति के गढ़े में धकेलने वाला दूसरा बहुत बड़ा कारण है फलित ज्योतिष। यह फलित ज्योतिष कई भागों में विभक्त है। यथा—मुहूर्त नवग्रह-पूजा और दिशाशूल।

वैदिक-साहित्य में ज्योतिष का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। ज्योतिष को वेद के षडङ्गों में से एक माना गया है। वेदों में बहुत-से ऐसे मन्त्र विद्यमान हैं जिन्हें ज्योतिष की सहायता के बिना समझा नहीं जा सकता, परन्तु यह सारा महत्त्व गणित ज्योतिष का है, फलित का नहीं।

यहाँ गणित और फलित ज्योतिष का अन्तर स्पष्ट करना आवश्यक है। गणित ज्योतिष वह विद्या है, जिसके द्वारा सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि से प्रकृति में होने वाली घटनाओं का यथार्थ ज्ञान हो। जैसे सूर्य ग्रहण कब होगा? चन्द्रग्रहण कब होगा? ऋतुओं का परिवर्तन कब और किस प्रकार होता है? दिन घटना कब आरम्भ होता है और बढ़ना कब आरम्भ होता है। गणित ज्योतिष से हम नक्षत्रों की स्थिति जानकर ऐतिहासिक घटनाओं का ज्ञान भी प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरण के रूप में जिस समय महाभारत का युद्ध हुआ था, उस समय ग्रह एक युति में थे। पाश्चात्य ज्योतिर्विद बेलो (Bailly) के अनुसार ईसा से ३१०२ वर्ष पूर्व २० फरवरी को २ बज कर २७ मिनट और ३० सेकण्ड पर ग्रह एक युति में थे। अतः महाभारत का समय ३१०२+

१९६५=५०६६ वर्ष होगा। यह है ज्योतिष के अनुसार महाभारत का समय और परम्परा के अनुसार भी यही ठीक है। इस गणित ज्योतिष को आर्य-समाज मानता है।

फलित ज्योतिष क्या है? यदि जन्म-लग्न में राहु हो, छठे स्थान में चन्द्रमा हो तो बालक की मृत्यु हो जाती है। यदि जन्म-लग्न में शनि हो और छठे स्थान में चन्द्रमा हो तथा सातवें स्थान में मंगल हो तो बालक का पिता मर जाता है। जन्म-लग्न में तीसरे स्थान में भौम हो तो जितने भाई हों सभी का नाश हो जाता है। इसी प्रकार यदि रात को बच्चा उत्पन्न होगा तो अमुक प्रकार का होगा। रविवार को होगा तो अमुक प्रकार का होगा। किसी कन्या का विवाह अमुक समय में हो गया तो वह विधवा हो जाएगी, आदि-आदि। यह है फलित-ज्योतिष। यह सर्वथा मिथ्या है। लोगों को बहकाने और ठगने का पाखण्ड है।

फलित-ज्योतिष ने भारत के पतन एवं अकल्याण की प्रभूत सामग्री प्रस्तुत की है। यहाँ हम एक ऐतिहासिक घटना लिखने का लोभ संवरण नहीं कर सकते।

महमूद गजनवी ने भारत के ऊपर सतरह आक्रमण किये। अन्तिम बार सन् १०२४ ई० में उसने काठियावाड़ के प्रसिद्ध मन्दिर सोमनाथ पर आक्रमण किया। सोमनाथ की रक्षा के लिए एक बहुत बड़ी सेना तैयार खड़ी थी, परन्तु परिणाम क्या हुआ यह महर्षि दयानन्द के शब्दों में पढ़िए—

"पोप, पुजारी, पूजा, पुनश्चरण, स्तुति-प्रार्थना करते थे कि 'हे महादेव! इस म्लेच्छ को तू मार डाल, हमारी रक्षा कर।" और वे अपने राजाओं को समझाते थे कि 'आप निश्चित रहिए। महादेवजी भैरव अथवा वीरभद्र को भेज देंगे। वे सब म्लेच्छों को मार डालेंगे वा अन्धा कर देंगे। अभी हमारा देवता प्रसिद्ध होता है। हनुमान्, दुर्गा और भैरव ने स्वप्न दिया है कि हम सब काम कर देंगे।' वे बिचारे भोले राजा और क्षत्रिय पोपों के बहकाने से विश्वास में रहे! कितने ही ज्योतिषी पोपों ने कहा कि अभी तुम्हारी चढ़ाई का मुहूर्त नहीं है। एक ने आठवाँ चन्द्रमा बतलाया। दूसरे ने योगिनी सामने दिखाई, इत्यादि बहकावट में रहे, जब म्लेच्छों की फौज ने आकर घेर लिया तब दुर्दशा से भागे। कितने ही पोप, पुजारी, और उनके चेले पकड़े गये। पुजारियों ने यह भी हाथ जोड़ कहा कि तीन करोड़ रुपये ले लो, मन्दिर और मूर्ति मत तोड़ो। मुसलमानों ने कहा कि हम 'बुतपरस्त' नहीं किन्तु 'बुतशिकन' हैं अर्थात् मूर्तिपूजक नहीं किन्तु मूर्तिभंजक हैं। जाके झट मन्दिर तोड़ दिया। जब ऊपर की छत टूटी तब चुम्बक पाषाण पृथक् होने से मूर्ति गिर पड़ी। जब मूर्ति तोड़ी तब सुनते हैं कि अठारह करोड़ के रत्न निकले। जब पुजारी और पोपों पर कोड़े पड़े तब रोने लगे। कहा कि कोष बताओ, मार के मारे झट बतला दिया। तब सब कोष लूट-मार-कूदकर पोप और उनके चेलों को 'गुलाम' बिरागी बना पिसना पिसवाया, घास खुदवाया, मल-मूत्रादि उठवाया और चना खाने को दिये। हाय! क्यों पत्थर की पूजा कर सत्यानाश को प्राप्त हुए। क्यों परमेश्वर की भक्ति न की जो म्लेच्छों के दाँत तोड़ डालते। और अपनी विजय करते। देखो, जितनी मूर्तियाँ हैं, उतनी शूरवीरों की पूजा

करते तो भी कितनी रक्षा होती। पुजारियों ने इन पाषाणों की इतनी भक्ति की, परन्तु मूर्ति एक भी उन शत्रुओं के सिर पर उड़के न लगी। जो किसी एक शूरवीर पुरुष की मूर्ति के सदृश सेवा करते तो वह अपने सेवकों को यथा-शक्ति बचाता और उन शत्रुओं को मारता।"

—सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास

आज कोई भी कार्य किया जाए—मुण्डन हो, यज्ञोपवीत हो, विवाह हो, दुकान का उद्घाटन हो, गृहप्रवेश हो या भवन का शिलान्यास हो—प्रत्येक बात में मुहूर्त देखा जाता है। ग्रह-नक्षत्र और कुण्डलियाँ मिलाई जाती हैं परन्तु फिर भी व्यापार में घाटे हो जाते हैं, मकान बनने में भी विलम्ब होते हैं, लड़कियाँ विधवा हो जाती हैं। यह कोई कपोलकल्पना नहीं है। लीजिए, मैं प्रमाण प्रस्तुत करता हूँ—

महाराज मुञ्ज ने ज्योतिषी के कहने पर अपने मन्त्री वत्सराज को भोज को मारने का आदेश दिया। उसकी बात सुनकर मन्त्री ने कहा—

त्रैलोक्यनाथोरामोऽस्ति वसिष्ठो ब्रह्मपुत्रकः।
तेन राज्याभिषेके तु मुहूर्त्तकथितोऽभवत्॥
तन्मुहूर्तेन रामोऽपि वनं नीतोऽवनीं विना।
सीतापहारोऽप्यभवद्वैरिञ्चवचनं वृथा॥
जातः कोऽयं नृपश्रेष्ठ किंचिज्ज उदरम्भरिः।
यदुक्त्या मन्मथाकारं कुमारं हन्तुमिच्छसि॥

भगवान् ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठजी ने त्रिलोकीनाथ श्रीराम के राज्याभिषेक का मुहूर्त्त बतलाया था, उसी मुहूर्त्त में राम को राज्य त्यागकर वन-वन में जाना पड़ा और वहाँ सीता भी चुरा ली गई, वसिष्ठजी का वचन असत्य ही सिद्ध हुआ, फिर इस पेटू पण्डित के कहने से आप कामदेव के समान सुन्दर भोज को क्यों मारना चाहते हो?

इसी तथ्य को सूरदासजी ने यूं वर्णित किया है—

कर्मगत टारे नाही टरे।
गुरु वसिष्ठ से पण्डित ज्ञानी रुचि-रुचि लगन धरी।
सीता हरन मरन दशरथ को विपत में विपत परी॥

मुहूर्त्त क्या है! महर्षि मनु के अनुसार—

निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला।
त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः॥

—मनु० १। ६४

पलक झपकने का नाम निमेष है। १८ निमेष की एक काष्ठा, तीस काष्ठा की एक कला, तीस कला का एक मुहूर्त्त और तीस मुहूर्त्त का एक दिन-रात होता है।

इस प्रकार मुहूर्त्त तो काल की संज्ञा है। क्या यह किसीके ऊपर चढ़ सकता है? या किसीको खा सकता है? अथवा किसीको भस्म कर सकता है?

यदि मुहूर्त्त देखना कोई लाभदायक बात है तो जिन लोगों में (ईसाई,

मुसलमान आदि) मुहूर्त्त नहीं देखा जाता, उनको हानि होनी चाहिए। परन्तु यहाँ तो हिसाब ही उलटा है। हिन्दुओं में जहाँ लग्न और मुहूर्त्त देखकर विवाह किये जाते हैं, वहाँ विधवाओं की संख्या अन्य देशों की अपेक्षा बहुत अधिक है। मुहूर्त्त देखने से सन्तान अधिक योग्य उत्पन्न होती हो, पति-पत्नी में अधिक प्रेम रहता हो—ऐसी बात भी दृष्टिगोचर नहीं होती। ऋषि सन्तान! भारत माता के नौनिहालो! वास्तविकता को समझो और पाखण्ड से बचो।

किसी भी कार्य को आरम्भ करने पर नवग्रह पूजा को टकापन्थी पण्डित अनिवार्य बताते हैं। नवग्रह पूजा में भी सबसे पूर्व विघ्नविनाशक गणेश का पूजन होता है। एक मिट्टी की डली पर कलावे के दो-तीन चक्कर लगा दिये जाते हैं और उस पर धूप, दीप, नैवेद्य आदि चढ़वाया जाता है। यह भी पण्डितों के खाने-कमाने का ढंग है। बार-बार टका चढ़वाकर वे लोग पर्याप्त राशि इकट्ठी कर लेते हैं। जड़ मिट्टी का ढेला तो अपनी रक्षा नहीं कर सकता, दूसरे के विघ्न क्या दूर करेगा?

एक बार एक पण्डितजी किसी जाट यजमान के यहाँ पहुँच गये। जब पण्डितजी ने पहली बार टका रखवाया तो जाट जी ने रख दिया। दूसरी बार फिर टका रखने के लिए कहा तो जाटजी ने सोचा, पता नहीं पण्डितजी कितनी बार टका रखवायेंगे। अत: पण्डितजी का ध्यान हटते ही जाटजी ने गणेश की मूर्ति को उठाया और पीछे की ओर फेंककर भोलेपन से पूछा, "पण्डितजी टका कहाँ रखूँ?" पण्डितजी ने कहा, "यहाँ रख, इस गणेश के ऊपर।" जाटजी ने कहा, "गणेश कहाँ हैं, वह तो अपना टका लेते ही चला गया था।" यदि सभी व्यक्तियों में इस प्रकार की भावनाएँ जागृत हो जाएँ तो ये अवैदिक प्रथाएँ समाप्त हो सकती हैं।

नवग्रह पूजा पाखण्ड है। ज्योतिषियों द्वारा स्वीकृत नवग्रह ये हैं—सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु। राहु और केतु वस्तुतः ग्रह नहीं हैं। ये दोनों चन्द्रमा के मार्ग की कल्पित ग्रथियाँ हैं। शेष सात में भी सूर्य और चन्द्रमा ग्रह नहीं हैं। कोश में ग्रह का अर्थ इस प्रकार दिया गया है—"सूर्य की परिक्रमा करने वाला तारा।" इस परिभाषा के अनुसार सूर्य नक्षत्र सिद्ध होता है। चन्द्रमा प्रकाशशून्य है और सूर्य की परिक्रमा न कर पृथिवी की परिक्रमा करता है, अतः यह भी ग्रह नहीं है। इस प्रकार कुल ग्रह पाँच ही रह जाते हैं। जब ग्रह पाँच ही हैं तो नवग्रह पूजा कैसी?

ज्योतिषियों ने सभी ग्रहों के लिए वेदमन्त्र खोज निकाले हैं। यहाँ सभी की समीक्षा का तो स्थान नहीं है, परन्तु पाखण्ड के भण्डाफोड़ के लिए दो-तीन मन्त्रों पर हम यहाँ विचार करेंगे।

शनि के लिए जो मन्त्र पढ़ा जाता है, वह इस प्रकार है—

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः॥ —यजु० ३६।१७

इस मन्त्र में 'शनि' पद ही नहीं है। उव्वट और महावीर ने भी इस मन्त्र का भाष्य करते हुए इसका शनि-ग्रह परक अर्थ नहीं किया है। मन्त्र का ठीक अर्थ इस प्रकार है—

सबका प्रकाशक, सबको आनन्द देने वाला और सर्वव्यापक ईश्वर मनोवांछित आनन्द के लिए और पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिए हमारे लिए कल्याणकारी हो। वह प्रभु हम पर सब ओर से सुखों की वृष्टि करे।

अब केतु का मन्त्र देखिए—

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे।
समुषद्भिरजायथाः॥ —यजु० २९।२७

इस मन्त्र में 'केतु' शब्द पड़ा हुआ है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है परन्तु इसका 'केतु-ग्रह' के साथ निश्चितरूपेण कोई सम्बन्ध नहीं है। उव्वट ने 'केतु का अर्थ 'प्रज्ञान' किया है और महीधर ने 'ज्ञान' अर्थ किया है। मन्त्र का ठीक अर्थ यह होगा—

हे विद्वन्! अज्ञानियों को ज्ञान प्रदान करते हुए और धनहीन मनुष्यों को धन प्रदान करते हुए तू अज्ञान और दारिद्र्य का नाश करने वाले तेजस्वी पुरुषों के साथ उत्तम प्रकार प्रसिद्ध हो।

"उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि"—(यजु० १५।५४) इस मन्त्र को पाखण्डियों ने बुध का मन्त्र बना दिया। इस मन्त्र में बुध शब्द कहीं नहीं है। यहाँ 'उद्बुध्यस्व' क्रियापद है। इसका अर्थ है—उद्बुद्ध हो। बुद्ध का इस मन्त्र से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है।

जिन मन्त्रों का पाठ नवग्रह पूजा में होता है वे मन्त्र ही नवग्रह पूजा के नहीं हैं तो यह पूजा और फल सभी कुछ व्यर्थ हुआ। अतः बुद्धिमानों को इस पाखण्ड से बचना चाहिए।

ग्रह किसीके ऊपर चढ़ जाते हैं, यह भी मिथ्या है। दो व्यक्ति लो जिनमें एक के ग्रह (ज्योतिषियों के अनुसार) क्रूर हों और दूसरे के सौम्य। इन दोनों को ज्येष्ठ मास में जब ऊपर से सूर्य अग्नि बरसाता हो और नीचे से भूमि अग्नि उगलती हो, तब यमुना की रेती पर नंगे पैर चलाओ। जिस पर ग्रह क्रूर हैं उसके पैर और शरीर जलना चाहिए और जिसके सौम्य हैं उसके न जलने चाहिएँ। क्या ऐसा कभी हो सकता है? कदापि नहीं।

फलित-ज्योतिष का एक अंग दिशाशूल भी है। दिशाशूल का अर्थ है कि विशेष दिनो में विशेष दिशा की यात्रा करना उत्तम है और कुछ दिनों में कुछ दिशाओं में जाना हानिकारक है। पाखण्डियों ने अद्भुत गप्पें गढ़ी हुई हैं जैसे बुधवार को स्त्री को ससुराल नहीं भेजना चाहिए। इसी प्रकार यदि वधू को शुक्रवार को ससुराल भेज दिया जाए तो गर्भपात हो जाता है। यह सब भी वहम और पाखण्ड ही है।

एक बार ऐसा हुआ कि स्वयं पण्डितजी को अपनी लड़की को शुक्रवार को ससुराल भेजना पड़ा। लोगों ने कहा 'पण्डितजी आप तो शुक्रवार को ससुराल भेजने के लिए मना करते थे फिर आपने कैसे भेज दिया?' पण्डितजी ने कहा, "वसिष्ठ गोत्र वालों को कोई दोष नहीं होता।" पाठकगण! यदि वसिष्ठ गोत्र वालों को दोष नहीं होता तो औरों को क्या दोष हो सकता है? सावधान! इन ज्योतिषियों की चालों से बचो।

यदि विशेष दिन में विशेष दिशा में नहीं जाना चाहिए तो उस दिन उस

दिशा में जाने वाली सभी मोटरें, कारें, ट्रक, रेलगाड़ियाँ और वायुयान बन्द कर देने चाहिएँ। परन्तु हम देखते हैं कि रेलें और मोटरें प्रतिदिन प्रत्येक दिशा में जाती हैं। यदि दिशाशूल का कोई प्रभाव होता तो उस दिन गाड़ियों की टक्कर होकर सारे यात्रियों की मृत्यु हो जानी चाहिए थी।

ज्योतिषी लोग अपने पुत्र-पुत्रियों का विवाह तो लग्न देख-दाखकर और कुण्डली आदि मिलाकर ही करते हैं, फिर उनकी लड़कियाँ विधवा क्यों हो जाती हैं? ज्योतिषियों के अपने लड़के मर जाते हैं, इनके लड़के परीक्षाओं में फेल क्यों हो जाते हैं? ये ज्योतिषी पृथिवी में गड़े धन को जानकर स्वयं उसे क्यों नहीं निकाल लेते? व्यापार में तेजी-मन्दी को जानकर स्वयं करोड़पति क्यों नहीं हो जाते?

यदि यह फलित-ज्योतिष सच्चा होता तो इन ज्योतिषियों को पटड़ी पर बैठने की आवश्यकता न रहती। यदि इनकी भविष्य-वाणियाँ सच्ची होतीं तो इन सबको सी० आई० डी० (गुप्तचर) विभाग में कार्य मिलता अथवा ये चोरों का पता लगाकर और पुलिस को बताकर मालामाल हो जाते। ६ फरवरी, १९६५ को पंजाब के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री कैरों की निर्मम हत्या की गई थी। हत्यारों का पता लगाने के लिए ५० सहस्र रुपये की घोषणा की गई थी। कोई भी ज्योतिषी न बता सका कि कैरों का हत्यारा कौन है?

विभाजन से पूर्व भारतवर्ष में ६०० राजा थे। उन सभी ने ज्योतिषी पाल रखे थे। किसी ज्योतिषी ने अपने महाराज से यह नहीं कहा, "महाराज! सावधान हो जाइए। अपना कोई प्रबन्ध कर लो। यह राज्य आपसे छिनने वाला है। पटेलरूपी राहु आप को ग्रसने वाला है।" चलो राजाओं को न बताया तो कोई बात नहीं उन्होंने अपना भी कुछ प्रबन्ध नहीं किया। करते तो तब जब उन्हें भविष्य का कुछ ज्ञान होता।

आजकल भृगु-संहिता के नाम से भी एक पाखण्ड पनपने लगा है। प्रत्येक भृगु-संहिता वाला कहता है कि मेरी संहिता ही प्रामाणिक है, शेष सब मिथ्या हैं। प्रत्येक अपनी संहिता को सच्ची और दूसरों की संहिता को झूठी बताता है अतः ये सभी झूठे हैं।

इस फलित ज्योतिष के अन्तर्गत ही हस्तरेखा भी है। यह भी मिथ्या है। अनेक लोग ज्योतिषियों को अपना हाथ दिखाकर अपने को ठगाते हैं। आपके हाथ में क्या है? लीजिए, एक ऐतिहासिक, महत्त्वपूर्ण एवं शिक्षाप्रद घटना पढ़िए।

एक बार एक युवक महर्षि दयानन्द के पास गया और अपना हाथ आगे बढ़ाकर कहने लगा 'देखिए मेरे हाथ में क्या है?' स्वामीजी ने उसके हाथ को देखते हुए कहा--"इसमें खून है, मांस है, चर्बी है, चाम है, हड्डियाँ हैं और क्या है?"

हमारे हाथ में क्या है? वेद कहता है—

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनञ्जयो हिरण्यजित्॥

—अथर्व० ७।५०।८

मेरे दाएँ हाथ में कर्म है और बाएँ हाथ में विजय है। मैं कर्म के द्वारा गौ, भूमि, अश्व, धन और स्वर्ण का विजेता बनूँ।

यदि आप रेखाओं के भरोसे ही बैठे रहे तो कुछ नहीं होगा। कर्म द्वारा, प्रबल पुरुषार्थ द्वारा आप सारे संसार का शासन भी कर सकते हैं, अतः कर्म करो।

मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता और विधाता स्वयं है। ज्योतिष के द्वारा आपके भाग्य का निर्माण नहीं हो सकता। ज्योतिषी आपको धन और सम्पत्ति नहीं दे सकते। अपना उद्धार करने के लिए स्वयं लंगर-लंगोटे कसकर खड़े हो जाओ। सदा महर्षि दयानन्द के इन वचनों को स्मरण रखो--

"जो धनाढ्य, दरिद्र, प्रजा राजा, रङ्क होते हैं वे अपने कर्मों से होते हैं, ग्रहों से नहीं।" —सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास

बौद्ध और जैनधर्म का मिथ्या अहिंसावाद

(3)

बौद्ध और जैन मतावलम्बियों का मिथ्या अहिंसावाद भारत की अवनति और विनाश का तीसरा प्रमुख कारण है।

वैदिक साहित्य में अहिंसा का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। योगदर्शनकार महर्षि पतञ्जलि ने यमों में अहिंसा को सर्वप्रथम स्थान प्रदान किया है, क्योंकि अहिंसा की सिद्धि के बिना उपासना सफल नहीं हो सकती। महाभारतकार महर्षि व्यास ने तो यहाँ तक कह दिया है—

अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंस: परमो दम: ।।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तप: ।।

—महा० अनु० ११६।२८

अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम संयम है, अहिंसा परम दान है और अहिंसा ही परम तप है।

अहिंसा का अर्थ है—वैर त्याग, मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी के प्रति वैर की भावना न रखना। वेद में तो इससे भी ऊँची भावना है। वेद-भक्त की तो यह प्रार्थना और कामना रहती है—

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।।

—यजु० ३६।१८

मैं संसार के सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ।

परन्तु यहाँ एक बात स्मरण रखने योग्य है। यह तो सामान्य उपदेश है। जिस समय गुण्डे और अत्याचारी अबलाओं पर अत्याचार कर रहे हों, जिस समय बलवान् निर्बलों को पीड़ा दे रहे हों, जिस समय शत्रु हमारे राष्ट्र पर आक्रमण कर रहे हों तब हम क्या करें क्या आततायी, गुण्डों और शत्रुओं से मार खाते हुए, उनसे पिटते हुए '**अहिंसा परमो धर्म:**' की दुहाई देते रहें? नहीं, कदापि नहीं। शत्रुओं से हमारा व्यवहार कैसा हो? वेद का स्पष्ट आदेश है—

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥

—अथर्व० ११।१०।१

हे वीर योद्धाओ ! आप अपने झण्डों को लेकर उठ खड़े होओ और कमर कसकर तैयार हो जाओ ! हे सर्पों के समान क्रुद्ध, रक्षाकारी विशिष्ट पुरुषो ! अपने शत्रुओं पर धावा बोल दो।

वेद में राजा के लिए आज्ञा है—

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम्।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥

—अथर्व० ८।४।२४

हे इन्द्र ! देश के शासक, राजा वा नेता ! डाकू, लुटेरे और हिंसकों की गर्दनों को तलवार से काटकर धड़ से अलग कर दे। ऐसे आततायी चाहे स्त्रियाँ हों या पुरुष सबके लिए एक ही दण्ड है। दुष्टों के मारने में विलम्ब नहीं करना चाहिए। उनका सफाया इतनी शीघ्र कर देना चाहिए कि वे दूसरे दिन सूर्य का दर्शन न कर सकें।

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर कहा है—

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः।
अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति ॥

—अथर्व० १।२१।२

हे इन्द्र ! राजन् ! सेना लेकर हमारे ऊपर आक्रमण करने वाले शत्रुओं का नाश कर। हमारे शत्रुओं को नीचा दिखा। जो हमारा विनाश करना चाहता है, जो हमें दास बनाना चाहता है, उसे घोर अन्धकार में फेंक दे।

इस प्रकार के शतशः वेद मन्त्र उपस्थित किये जा सकते हैं परन्तु विस्तार-भय से अधिक नहीं लिखते। वेद की इन्हीं भावनाओं और आदेशों के अनुसार महर्षि मनु ने भी कहा है—

नाततायी वधे दोषः ॥ —मनु० ८।३५१

अर्थात् आततायी का वध करने में कोई दोष नहीं है। इतना ही नहीं, मनुजी ने तो यहाँ तक लिख दिया है—

आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥

—मनु० ८।३५०

आततायी को तो बिना विचारे मार देना चाहिए।

यह है अहिंसा और हिंसा के सम्बन्ध में वैदिक विचारधारा। जो इस विचारधारा पर आचरण करते हैं वे फलते-फूलते हैं, जीवन मे सुख पाते हैं और सर्वविध उन्नति करते हैं। इस विचारधारा को न अपनाकर, इस विचार-धारा के प्रतिकूल चलने पर हानि उठानी पड़ती है। हमारा प्राचीन इतिहास इस बात का साक्षी है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने वैदिक हिंसा के आदर्श को सम्मुख रखकर गौ और ब्राह्मण के कल्याण के लिए तथा देश की रक्षार्थ ताड़का का वध किया। मारीच और सुबाहु को यमलोक पठाया और अन्त में रावण का काम भी तमाम

कर दिया। परिणाम क्या हुआ—ऋषियों की रक्षा और रामराज्य की स्थापना।

योगेश्वर श्रीकृष्ण ने वैदिक हिंसा के आदर्श को सम्मुख रखकर शिशुपाल का वध किया, हयग्रीव और निशुम्भ को नष्ट किया तथा जरासन्ध, कर्ण और दुर्योधन को मरवाया। परिणाम क्या हुआ? भारतवर्ष में सहस्रों वर्षों तक अखण्ड चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना हुई।

अब केवल अहिंसा अपनाने के जो भयंकर दुष्परिणाम हुए उनका भी अवलोकन कर लीजिए। भारतवर्ष में महात्मा बुद्ध और वर्धमान महावीर दो ऐसे महापुरुष उत्पन्न हुए जिन्होंने केवल अहिंसा को ही परम धर्म माना। इन दोनों महापुरुषों ने अहिंसा पर बड़ा बल दिया। दोनों ही महानुभावों ने युद्ध का घोर विरोध किया। उनका कहना था कि "अपनी ही अन्तरात्मा के साथ युद्ध करो, बाहर के युद्ध से क्या लाभ?"

उच्चावस्था में पहुँचा हुआ योगी, साधु या महात्मा यदि अपने जीवन में केवल अहिंसा को अपनाए तो जगत् की कोई हानि नहीं। महात्मा बुद्ध और श्री महावीर भी अहिंसा को यदि अपने तक ही सीमित रखते तो देश और जाति की कोई हानि न होती परन्तु उन्होंने प्रत्येक अवस्था में और प्रत्येक मनुष्य में सामूहिकरूप से अहिंसा की भावना उत्पन्न की जिसका परि-परिणाम यह हुआ कि करोड़ों क्षत्रिय वीर केवल अहिंसा का आश्रय लेकर बौद्ध भिक्षुक और जैन श्रावक बनकर कायर, डरपोक, भीरु और नपुंसक बन गये।

सन् ६३० में जब प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेन्त्सांग भारत में आया तो उसने लिखा था कि कपिश (काफिरस्तान) सारा बौद्ध हो गया था। लम्पाक और नगर (जलालाबाद) में कुछ हिन्दुओं को छोड़कर शेष सारा काबुल बौद्ध हो गया था। सारे भारतवर्ष में लगभग आधी जनसंख्या बौद्धों की दिखाई देती थी। बंगाल और बिहार तो बौद्धों के प्रमुख गढ़ बन गये थे। बंगाल और बिहार में जैन और बौद्ध मत का हिंसा के विरुद्ध इतना प्रचार था कि बंगाल और बिहार के निवासी सेना में भरती नहीं होते थे। इस झूठी अहिंसा का परिणाम यह हुआ कि लोगों के जीवनों में शत्रुओं के दमन की, देश, जाति और धर्म की रक्षा की भावनाना नष्ट हो गई। परिणामस्वरूप देश परतन्त्र एवं पराधीन हुआ।

इस्लामी आक्रमण आरम्भ हुए। काबुल जो सारा-का-सारा बौद्ध बन गया था शत्रुओं के आक्रमण का प्रतिरोध न कर सका। मार खाते हुए, पिटते और पददलित होते हुए सारे बौद्ध मोहम्मदी मत में प्रविष्ट हो गये।

जब मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया तो वहाँ के बौद्ध भिक्षु धीरे-धीरे मुसलमान बन गये। शिवि (जो अब पाकिस्तान में है और जिसे अब सिवी कहते हैं) पर जब कासिम ने आक्रमण किया तो वहाँ का शूरवीर क्षत्रिय राजा शत्रुओं का मुकाबला करने के लिए किले पर खड़ा हो गया। नागरिकों ने जो प्रायः बौद्ध और जैन थे राजा से प्रार्थना की कि युद्ध करना और शत्रुओं को मारना हमारे धर्म के विरुद्ध है। अतः आप युद्ध न करके शत्रु से सन्धि कर लें। जब वीर वत्सराज

ने इनका कायरतापूर्ण परामर्श स्वीकार नहीं किया तो इन्होंने शत्रु को सन्देश भेजा कि यदि तुम बौद्धों को न मारने की प्रतिज्ञा करो तो हम नगर का पिछला द्वार खोल देंगे। कासिम ने इसे स्वीकार कर लिया। बौद्ध-भिक्षुओं ने नगर के पिछले द्वार खोल दिये। कासिम अपने सैनिकों सहित नगर में प्रविष्ट हो गया। मुसलमान सैनिकों ने थोड़े-से बौद्ध-भिक्षुओं को छोड़कर प्रजा को खूब लूटा। अनेक व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया और शेष को दास बना लिया।

(देखिए History of India by C.V. Vaiday)

बिहार में बौद्ध भिक्षुओं के सैकड़ों विहार (मठ) थे, इस कारण उस का नाम ही (बिहार) पड़ गया। इस प्रान्त में नालन्दा और विक्रमशिला बौद्ध भिक्षुओं के दो विश्वविख्यात विश्वविद्यालय थे। इनमें लाखों हस्तलिखित एवं बहुमूल्य ग्रन्थ थे और यहाँ सहस्रों बौद्ध भिक्षु शिक्षा प्राप्त करते थे। सन् ११९७ में मुहम्मद बिन बख्त्यार खिल्जी ने केवल २०० सैनिक लेकर पहले नालन्दा और फिर विक्रमशिला पर आक्रमण किया। बौद्ध भिक्षुओं को जब आक्रमण का पता लगा तो सहस्रों भिक्षु सिर मुंडाकर तथा पीले वस्त्र पहन कर, हाथ में माला लिये हुए, **'अहिंसा परमो धर्मः'** और **'नमो बुद्धाय'** का जाप करते हुए धर्मान्ध मुसलमानों से प्रार्थना करने लगे कि हमारे ऊपर दया करो। मुसलमान सैनिकों ने कई सहस्र भिक्षुओं को गाजर-मूली की भाँति काटकर मृत्यु की गोद में सुला दिया।

नालन्दा का हत्याकाण्ड पूर्ण कर ये मुसलमान विक्रमशिला विश्वविद्यालय में पहुँचे। वहाँ भी यही हुआ। वे भिक्षु जप करते रहे और मुसलमान उन्हें तलवार का निशाना बनाते रहे। बौद्ध-भिक्षु बिना किसी प्रकार का प्रतिरोध किये सिर झुकाकर कटते रहे। भिक्षुओं को समाप्त कर बख्त्यार खिल्जी ने उन दोनों विश्वविद्यालयों की लाखों बहुमूल्य पुस्तकों को जलाकर भस्म कर दिया। (देखिए History of India by Elliot)

पाठकगण ! यह है भीरुता की पराकाष्ठा ! शत्रु आक्रमण कर रहा है और बौद्ध भिक्षु सिर झुकाये मर और कट रहे हैं। यदि ये सहस्रों भिक्षु बिना अस्त्र-शस्त्रों के लात और घूंसों से भी शत्रु के ऊपर आक्रमण करते तो २०० मुसलमानों की बोटी भी देखने में नहीं आती। २०० मुसलमानों ने सहस्रों बौद्धों को सदा के लिए भूमि पर सुला दिया। यह है जैन-बौद्धों की झूठी अहिंसा का दुष्परिणाम।

१५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र हो गया, भारत को लंगड़ी स्वतन्त्रता मिल गई। भारत को धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया, परन्तु भारत में मुर्दा बौद्धमत को पुनर्जीवित करने के प्रयत्न आरम्भ हुए। हमारे राष्ट्रीय-ध्वज में अशोक-चक्र को अपनाया गया। अशोक बौद्ध था यह तो सर्व-विदित ही है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता से विमुख पं० जवाहरलाल नेहरू भारत को अवनति के गढ़े में गिराने के लिए जैन और बौद्धों की झूठी अहिंसा, दया और मैत्रीभाव का अन्धानुकरण जीवन भर करते रहे। चीन का उदाहरण हमारे सामने है। नेहरूजी नरपिशाच चीनी कम्युनिस्टों के प्रति

शान्ति और सद्व्यवहार का बर्ताव करते रहे। इतना ही नहीं शान्ति और मैत्री बनाए रखने के लिए उन्होंने तिब्बत में, जो सदा से भारत का अंग रहा है, चीन की प्रभुसत्ता स्वीकार करने तक की भयंकर भूल की। चीन ने धीरे-धीरे हमारी १२,००० वर्गमील भूमि अपने अधिकार में ले ली। नेहरूजी ने वैदिक हिंसा को अपनाकर ऐसे दुष्ट और आततायी का सिर नहीं फोड़ा अपितु 'शांति-शांति' ही चिल्लाते रहे। इस शांति और सद्भावना का लाभ उठाकर विश्वासघाती चीन ने अक्तूबर १९६२ में भारत पर सशस्त्र आक्रमण कर भारत की २२,००० वर्गमील भूमि हथिया ली। सैकड़ों सैनिक मारे गये।

पाकिस्तान आये दिन भारत की सीमाओं पर गोली चलाता है। गोली ही नहीं चलाता वह कच्छ में घुस आया है और अब तो उसने कश्मीर में भी घुसपैठ आरम्भ कर दी है परन्तु भारत के ये कायर, दब्बू और भीरु शासक केवल विरोध-पत्र भेजकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। विरोध-पत्रों से पाकिस्तान की अलमारियाँ भर गई होंगी, अब उनके पास भारत के विरोध-पत्रों को रखने की जगह भी न होगी। अत: विरोध-पत्र न भेजकर अब तो कुछ करने की आवश्यकता है। अब तो गोली का उत्तर गोली से देने से ही देश का कल्याण हो सकता है।

यहाँ हम विवेकानन्द जी के शब्दों में यह कहे बिना नहीं रह सकते—

'अहिंसा परमो धर्म:' बौद्ध धर्म का एक बहुत अच्छा सिद्धान्त है परन्तु अधिकारी का विचार न करके जबरदस्ती राज्य की शक्ति के बल पर उस मत को सर्वसाधारण पर लादकर बौद्ध धर्म ने देश का सर्वनाश किया है।

—विवेकानन्द साहित्य, भाग ६ पृ० १४३

जैन और बौद्धों के झूठे अहिंसावाद से देश का सत्यानाश हुआ है और हो रहा है तथा आगे भी होगा। अत: इसे तिलांजलि देकर और वैदिक अहिंसा-वाद अपनाने पर ही देश उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होगा।

३ शंकराचार्य का जगत् मिथ्यावाद

एक और विनाशकारी एवं मिथ्या विचारधारा जो इस समय भारतवर्ष में फैल रही है और जिसने भारत को पतन के गहरे गढ़े में ढकेला है, वह है—जीव और ब्रह्म एक ही है, यह संसार झूठा है, मिथ्या है, स्वप्न के सदृश है। अनेक साधु-संन्यासी, महन्त और गद्दीधारी, मिशन तथा मठ और वेदान्त सम्मेलन इस मिथ्या विचारधारा के प्रसार और प्रचार में जुटे हुए हैं।

इस विचारधारा के आदि प्रवर्तक थे गौडपादाचार्य। पीछे चलकर श्री शंकराचार्य ने इस मत का प्रभूत प्रचार किया। शंकराचार्य के प्रचार से बौद्ध और जैनमत का तो उन्मूलन हो गया परन्तु अद्वैतवाद अथवा जगत् मिथ्यावाद की जड़ जम गई। श्री शंकराचार्य का यह मत वेद, दर्शन और उपनिषदों के सर्वथा प्रतिकूल है। वेद में त्रैतवाद का प्रतिपादन है। देखिए—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।।

—ऋ० १।१६४।२०

सुन्दर गति वाले, व्याप्य-व्यापक भाव से संयुक्त, मित्रों के समान वर्तमान जीवात्मा और परमात्मा प्रकृतिरूपी वृक्ष पर बैठे हुए हैं। उन दोनों में से जीव तो पाप-पुण्य से उत्पन्न दुःख-सुख भोग का मधुरता से उपभोग करता है और दूसरा परमात्मा कर्मफल को न भोगता हुआ साक्षिमात्र है।

इस मन्त्र से ईश्वर, जीव और प्रकृति तीन अनादि सत्ताएँ स्पष्ट सिद्ध हैं। इस प्रकार के और भी अनेक मन्त्र दिये जा सकते हैं परन्तु पुस्तक का कलेवर आज्ञा नहीं देता।

शंकराचार्य के दादा-गुरु गौडपादाचार्य का कहना है कि "ब्रह्मसत्य जगन्मिथ्या" (गौ० का० २।३२) अर्थात् ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है। क्या जगत् झूठा है ? यदि वेदादि शास्त्रों का अवलोकन किया जाए तो पता चलेगा कि जगत् झूठा और मिथ्या नहीं है अपितु सत्य है, ध्रुव है। वेद में कहा है—

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ।।

—ऋ० १०।१७३।४

राजा का अभिषेक करते हुए पुरोहित उसे आशीर्वाद देते हुए कहता है—सूर्य ध्रुव है (सदा एक ही स्थान पर रहने वाला है, अपनी कीली पर घूमता है, किसी अन्य ग्रह की परिक्रमा नहीं करता) पृथिवी भी ध्रुव है (पृथिवी अपनी कीली पर घूमती हुई सूर्य की परिक्रमा करती है। इसे ध्रुव कहने का आशय यह है कि यहाँ अनेक राजा, महापुरुष, योगी-तपस्वी, ज्ञानी और ध्यानी आते हैं, वे सब काल के गाल में चले जाते हैं, परन्तु पृथिवी जहाँ-की-तहाँ ही रहती है)। पर्वत भी स्थिर और अचल हैं। समस्त जगत् भी ध्रुव है, सत्य है। इसी प्रकार यह राजा भी प्रजाओं में स्थिर और उनको धारण करने वाला हो। इस मन्त्र में जगत् को, संसार को, ध्रुव=नित्य, सत्य कहा गया है। ऋग्वेद में ही अन्यत्र कहा है —

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।

—ऋ० १०।१९०।३

धाता=सर्वधारक परमेश्वर सूर्य-चन्द्रमा आदि पदार्थों का निर्माण ठीक उसी प्रकार करता है जैसा पूर्वकल्प में किया था।

यजुर्वेद में कहा है—

याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधात्। —यजु० ४०।८

परमात्मा ने पदार्थों का याथातथ्य निर्माण किया।

हम पूछना चाहते हैं कि जो पदार्थ पूर्वकल्प के समान हैं, याथातथ्य हैं, क्या वे कभी मिथ्या हो सकते हैं ?

जो नवीन वेदान्ती यह कहते हैं कि जगत् मिथ्या है, भ्रम है, मायाजाल

है, धोखे की टट्टी है हम उनसे पूछना चाहते हैं कि क्या सड़कों पर दौड़ने वाले इक्के और तांगे, साइकिलें और मोटर-साइकिलें, मोटरें और कारें सब मिथ्या हैं ? क्या ये आकाश में उड़ते हुए विमान झूठे हैं ? हाट और हवेलियाँ, ये आश्रम और मठ क्या सब मायाजाल है ? क्या माता-पिता, स्त्री और पुत्र सब धोखा हैं ?

"माता-पिता सारे झूठे हैं, झूठा है संसार"—इस प्रकार के उपदेशों से जीवन का निर्माण नहीं हो सकता। माता-पिता झूठे, नाते और रिश्तेदार झूठे संसार झूठा, संसार में मेरा कोई नहीं इसका तात्पर्य क्या ? क्या हमें जन्म देने वाले, हमारा पालन और पोषण करने वाले, हमें शिक्षित और दीक्षित करने वाले माता-पिता भी झूठे और धोखा देने वाले हैं ? क्या सारा संसार मक्कारों से भरा हुआ है ?

जो लोग 'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या' का नारा लगाते हैं उनका आधार इतना कच्चा है कि एक झटके में धराशायी हो जाता है। एक बार एक वेदान्ती महर्षि दयानन्द के पास पहुँचा और लगा जगत् को मिथ्या बताने। महर्षि दयानन्द उसे युक्तियों से समझाते रहे। जब वह युक्तियों से न माना और कुतर्क ही करता रहा तब स्वामीजी ने उसके गाल पर एक हल्का-सा चपत लगा दिया। चपत खाकर वेदान्तीजी कहने लगे—"स्वामीजी ! यदि कोई आपकी विचारधारा को नहीं मानता तो यह तो उचित नहीं कि आप उसके चपत मारकर अपना सिद्धान्त मनवाएँ।" स्वामीजी बोले, "मैंने तुम्हें चपत कब मारा था ? ब्रह्म ने ब्रह्म को मारा।" वेदान्तीजी का वेदान्त का सारा नशा उतर गया और उसने अपनी भूल स्वीकार की।

एक और घटना पढ़िए। एक बार एक वेदान्ती आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वामी वेदानन्दजी के पास आया और कहने लगा, "यह सारा संसार झूठा है, बस ब्रह्म ही सत्य है।" स्वामी जी ने पूछा, "संसार में क्या है ?" वेदान्ती बोला—"यह जो कुछ भासमान है, जो कुछ दीख रहा है, सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, भवन, महल, कोठियाँ, कारें सब कुछ झूठा है।" स्वामीजी ने प्रश्न किया, "तुम भी संसार में हो या नहीं ?" वेदान्ती ने उत्तर दिया, "हाँ, हाँ, मैं भी संसार में हूँ।" स्वामी जी ने कहा, "जब तुम भी संसार में हो तो तुम भी झूठे और तुम्हारी बात भी झूठी हुई और सच्ची बात यह हुई कि 'जगत्सत्यं ब्रह्ममिथ्या'—जगत् सच्चा है और ब्रह्म झूठा है।" वेदान्ती स्वामीजी का मुँह ताकता रह गया।

वेदान्ती कहते हैं कि संसार स्वप्न से समान झूठा है। संसार की उपमा स्वप्न से देना ठीक नहीं है। जो पदार्थ प्रत्यक्ष दिखाई देता है उसकी उपमा स्वप्न से कैसे दी जा सकती है। दूसरे स्वप्न देखे और सुने पदार्थों के आते हैं चाहे वे इस जन्म में देखे हों अथवा पूर्वजन्म में। स्वप्न में जो पदार्थ देखे जाते हैं उनकी सत्ता का अभाव नहीं होता। इसके लिए सबसे प्रबल युक्ति यह है कि आज तक किसी व्यक्ति ने स्वप्न में अपने आपको टट्टी खाते हुए या पेशाब पीते हुए नहीं देखा क्योंकि मनुष्य कभी ऐसी कल्पना भी नहीं करता।

जगत् को मिथ्या सिद्ध करने के लिए वेदान्ती साँप और रस्सी का

दृष्टान्त दिया करते थे। वे कहते हैं कि जिस प्रकार अन्धकार और प्रकाश के मेल में रस्सी को साँप समझकर मनुष्य डर जाता है परन्तु प्रकाश होने पर सर्प का भय समाप्त हो जाता है, रस्सी को रस्सी समझ लेता है, इसी प्रकार ब्रह्म में जगत् की झूठी प्रतीति है। ब्रह्म के साक्षात् होने पर जगत् की निवृत्ति होकर केवल ब्रह्म की ही प्रतीति रहती है। यह दृष्टान्त भी वेदान्तियों के पक्ष का पोषक नहीं है। वेदान्ती तो केवल एक ही सत्ता स्वीकार करते हैं, परन्तु यहाँ तो चार सत्ताएँ हो गईं—१. रस्सी २. सर्प ३. प्रकाश और अन्धकार का मेल, ४. द्रष्टा। दूसरा आक्षेप यह है कि जगत् का भान किसको हुआ? यदि कहा जाए कि जीव को तो फिर हमारा प्रश्न होगा कि जीव कहाँ से हुआ? इस पर मायावादी कहते हैं कि यह सब अज्ञान के कारण होता है। इस पर हमारा आक्षेप होगा कि अज्ञाम (भ्रम) किससे हुआ। वेदान्ती कहते हैं कि अज्ञान (अविद्या, माया) अनादि काल से चला आया है और ब्रह्म में रहता है। यदि ऐसा माना जाए तो ब्रह्म अज्ञानी सिद्ध होगा। इसके अतिरिक्त अविद्या को सर्वव्यापी सर्वज्ञ का गुण मानें या अल्पज्ञ का? यदि अविद्या सर्वज्ञ का गुण है तो यह ठीक नहीं क्योंकि ब्रह्म में अविद्या हो नहीं सकती और यदि अल्पज्ञ का गुण मानें तो सर्वज्ञ ब्रह्म के साथ अल्पज्ञ जीव भी स्वीकार करना पड़ेगा।

इस लचर सि[illegible]न्त ने भारतवासियों को भीरु, कायर और डरपोक बना दिया। जब संसा[illegible] ही नहीं और सभी ब्रह्म हैं तब हमारे ऊपर हिन्दुओं ने राज्य किया तो क्या [illegible]र मुसलमानों ने राज्य किया तो क्या? इस हीन और अवैदिक भावना ने [illegible]रत का सत्यानाश किया। जगत् मिथ्यावाद के प्रभाव से आर्यजाति में उद्यमही[illegible]ता, अकर्मण्यता, उदासीनता और झूठे वैराग्य ने जन्म लिया। सन्तानों में मा[illegible]पता के प्रति आस्था समाप्त हो गई। पति पत्नियों को छोड़ वैरागी हो गये।

इस सिद्धान्त का हिन्दु समाज के चरित्र पर भी बुरा प्रभाव पड़ा है। आज मठों और आश्रमों में जो अनाचार और व्यभिचार दृष्टिगोचर होता है, उसका कारण यह 'जगत् मिथ्याद' का सिद्धान्त ही है। एक मठ में एक गुरु और चेला दोनों रहते थे। शिष्य की पत्नी अत्यन्त रूपवती थी। एक दिन शिष्य कहीं गया हुआ था। गुरु ने शिष्य-पत्नी के साथ आनन्दपूर्वक विहार किया। चेले को पता लगा और उसने गुरु से इस विषय में चर्चा की तो गुरु ने कहा—'ब्रह्म ने ब्रह्म के साथ भोग किया। शिष्य चुप हो गया। एक दिन गुरु कहीं दूर निकल हो गये। शिष्य ने गुरुआइन को पकड़ कर उसके साथ सहवास किया। गुरु को पता लगा और वे शिष्य को डाटने लगे तो शिष्य ने कहा, "हमने क्या किया, ब्रह्म को ब्रह्म का स्पर्श हुआ।" गुरु चुप होकर बैठ रहे।

नवीन वेदान्त की विचारधारा अवैदिके है। यह मनुष्य को अपने कर्त्तव्य के प्रति उदासीन बनाती है। यह मनुष्य में झूठा वैराग्य उत्पन्न कर व्यभिचार को बढ़ावा देती है। इस विचारधारा से मनुष्य कायर और भीरु बनता है। अतः इस विचारधारा को शीघ्रातिशीघ्र तिलांजलि देनी चाहिए, तभी देश और जाति का उत्थान एव उद्धार होगा।

सोमदत्त विद्यालंकार

'प्रतिशोध'

महाशय कर्त्ताराम अपने मकान की छत पर कुशा का आसन बिछाकर अभी संध्या के लिए बैठे ही थे कि "अल्ला हू अकबर" के गगनभेदी नारों ने उनका ध्यान संध्या से हटाकर बरबस उस ओर खींच दिया। वे पिछले कई दिनों से पंजाब के अनेक शहरों में हो रहे हिन्दू-मुसलिम दंगों के समाचार सुन रहे थे, इसलिए मामला क्या है ? इसका अनुमान करने में उन्हें जरा भी देर न लगी। उन्होंने देखा कि गाँव की उत्तर दिशा की ओर से मदांध मुसलमानों का एक बड़ा हजूम उमड़ा चला आ रहा है। संध्या का सब सामान वहीं छोड़ वह बड़ी फुर्ती से अपने मकान के नीचे उतर, गली में होकर, गाँव की शान्ति सभा के सदर मियाँ खुरशीद के घर की ओर चल पड़े। उस समय तक शांति सभा के लगभग सभी प्रतिष्ठित हिन्दू तथा मुसलमान सदस्य वहाँ पहुँच चुके थे। कुछ देर तक आपस में बातचीत करने के बाद सब लोग जिधर से वह हजूम आ रहा था, उसी ओर चल पड़े। आगे-आगे मुसलमान थे और पीछे हिन्दू। गाँव से बाहर लगभग दो-तीन फर्लांग की दूरी पर वे लोग उनसे जा मिले। मियां खुरशीद ने 'अल्ला हू अकबर' के नारे के सुर के साथ सुर मिलाकर, अपने दोनों हाथ ऊपर करके उस भीड़ को रोक दिया। वे अपने साथ के आदमियों को पीछे छोड़ भीड़ की ओर आगे बढ़े और हमलावरों के लीडर से बोले 'आप लोग क्या चाहते हैं ?' 'काफिरों का खून' सब गलों से एक ही आवाज निकली। 'तो लौट जाओ' इस गाँव के सब हिन्दू-मुसलमानों ने आपस में, दूध-पानी की मानिंद मिलकर एक रहने का अहद कर रखा है', मियाँ खुरशीद ने जोरदार पर धीमी-सी आवाज में कहा। 'काफिरों की जान बचाने की कोशिश करने वाला भी हमारी नजर में काफिर है। हमारे ये गंडासे पहले तुम्हारी गरदन साफ करेंगे और बाद में अपनी प्यास काफिरों की गरदन के खून से बुझायेंगे' कहकर हमलावरों के लीडर हुसैन ने मजमे को आगे बढ़ने का हुक्म दिया। गुण्डों में से एक ने अपनी कुल्हाड़ी मियाँ खुरशीद की गर्दन की ओर बढ़ाई ही थी कि बूढ़े मौलवी निसार ने बीच में पड़कर बुलन्द आवाज में कहा 'क्या हजरत मुहम्मद की यही तालीम है कि अहले मुसल्मीन अपने हम-मजहबों का खून बहायें ?' बूढ़े मौलवी की तकरीर ने सुलगती आग पर पानी का काम किया। थोड़ी देर तक दोनों ओर के लीडर आपस में बातचीत करते रहे। हमलावर गुण्डों ने गाँव के मुसलमानों के आगे यह प्रस्ताव रखा कि यदि मुरादपुर के सब हिन्दू इसलाम कबूल कर लें तो इससे उनका अहद भी कायम रहता है और हमारी मंशा भी पूरी हो जाती है। मियाँ खुरशीद ने महाशय कर्त्ताराम के पास जाकर यह प्रस्ताव सुना दिया। महाशय जी ने अपने साथियों से सलाह-मशविरा कर के अन्तिम उत्तर देने के लिए एक दिन की मोहलत माँगी। गुण्डे अपने-अपने गाँवों को लौट गए।

× × ×

अगले दिन मियाँ खुरशीद ने गुण्डों के लीडर हुसैन के पास, मुरादपुर के

हिन्दुओं का जवाब पहुँचा दिया। महाशय कर्त्ताराम ने लिखा कि 'हमारे गाँव के हिन्दुओं तथा सिखों ने बहुत सोच विचार के बाद यही फैसला किया है कि वे अपने प्राण तथा सर्वस्व देकर भी अपने धर्म की रक्षा करेंगे।

नगाड़े की आवाज सुनकर आसपास के गाँवों के सब मुसलमान गुण्डे अपने-अपने हथियार लेकर मुरादपुर की ओर रवाना हो गए। गाँव के सदर फाटक पर आज उन्हें रोकने के लिए उनके हम-मजहब मुसलमान जमा नहीं थे।

हमलावर गुण्डे लगभग दो हजार की तादाद में होंगे। इधर गाँव में नौजवान, बूढ़े, बच्चे तथा स्त्रियाँ सब मिलाकर डेढ़ हजार से अधिक हिन्दू न थे। हिन्द नौजवानों ने डटकर मुकाबला किया। वे आधे ही घण्टे में अपने से लगभग दुगुने हमलावरों को धराशायी करके वीरगति को प्राप्त हुए। इसके बाद गुण्डे, गाँव के बचे-खुचे बूढ़ों और बच्चों को कत्ल करके, प्यासी-ललचाई आँखों से घरों में घुसे पर उन्हें यह देखकर बहुत हैरानी हुई कि किसी भी घर में उन्हें एक भी बूढ़ी या नौजवान स्त्री दिखाई नहीं दी। भूखे भेड़ियों की तरह वे गाँव के मंदिर की ओर बढ़े। उन्हें दूर से ही मंदिर के आँगन से उठती हुई आग की लाल-लाल लपटें दिखाई दीं और उसमें से सुनाई दी कोमलांगिनियों की चिड़-चिड़ करके जलते मांस और हड्डियों के चटखने की आवाज।

× × ×

शाम का समय था। मुसलमान गुण्डे, हिन्दुओं की दुकानों और मकानों को लूटने में लगे हुए थे। गाँव का पुराना भंगी भिक्खू, जिसे बलात् मुसलमान बनाकर 'अहमद' बना दिया गया था, मियाँ खुरशीद के घर पाखाना कमाने गया तो उसने पाखाने के पास की कोठरी में महाशय कर्त्ताराम को बैठे देखा। उनके हाथ-पैर बँधे हुए थे, सिर और कमर से,बहते हुए खून से उनके कपड़े रंग कर लाल हो गए थे। इधर उधर किसी को न देखकर उसने कोठरी का कुण्डा खोला। महाशय जी ने उसे बतलाया कि किस प्रकार हमलावरों का मुकाबला करते हुए वे चोट लग जाने से बेहोश हो गए थे और फिर ये लोग उन्हें उठाकर यहाँ ले आये और बन्द कर दिया। वे बोले 'इनका इरादा मुझे कल जुम्मे के रोज जबरदस्ती गोमांस खिलाने तथा मुसलमान बनाने और यदि मैंने यह कबूल न किया तो मुझे टुकड़े-टुकड़े कर के मारने का है।'

भिक्खू ने अपनी आँखों के आंसुओं को पोंछते हुए कहा 'महाशय जी, आपने सदा हम गरीबों को फायदा पहुँचाने के लिए अपनी जान की भी परवाह नहीं की, मैं अपनी जान देकर भी आपकी जान बचाऊँगा। आप यदि बुरा न मानें तो मेरे ये कपड़े पहन कर हाथ में टोकरी और झाड़ू लेकर चुपके से निकल जाइए। जल्दी करें, मेरी आप तनिक भी फिकर न करें।अभी सब लोग लूटमार में लगे हुए हैं। देर करने से सब खेल बिगड़ जाएगा।'

मियाँ खुरशीद के घर से अहमद भंगी के कपड़े पहनकर जब महाशय कर्त्ताराम बाहर आये तो चारों तरफ हिन्दू तथा सिख वीरों की लाशें ही लाशें नजर आ रहीं थीं। इन लाशों में उन्होंने अपने सम्बन्धियों, भाइयों तथा बूढ़े पिता की लाशों को पहचाना, उन्होंने अपनी आँखों से अपने इकलौते बेटे की लाश को भी देखा जिसका एक-एक अंग उन नर पिशाचों ने काट-काट कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया था। वे अपने मन को काबू न रख सके। उनकी आँखों से बरबस आँसुओं की धार निकल कर कपड़ों को गीला करने लगी। उनकी आँखों में खून उतर आया, मन में आया कि इन नर पिशाचों से लड़ता हुआ मैं भी इन्हीं वीरों के मध्य में अपना स्थान बना

लूँ। पर अगले ही क्षण अपने मन में उठते विचारों को बलात् दबाकर वे गाँव की हरिजन बस्ती की ओर चल पड़े।

× × ×

कई दिन तक जंगलों में भटकने तथा गाड़ियों में धक्के खाने के बाद महाशय कर्त्तारामं दिल्ली पहुँचे। प्रतिहिंसा की आग उनके मन को अन्दर ही अन्दर जला रही थी। दिल्ली पहुँचकर उन्हें और भी सैंकड़ों शरणार्थी मिले जो उनकी तरह अपना घरबार, मकान, जायदाद, बाल बच्चों तथा परिवार को खोकर इधर-उधर किंकर्त्तव्य विमूढ़ से भटकते फिरते थे। वे जब यहाँ मुसलमानों को स्वच्छन्द घूमते देखते तो अपनी सरकार को, राष्ट्रीय नेताओं को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को कोसते और गालियां देते। उनके साथी शरणार्थी जब उन्हें यह कहते कि "हमने तो इनका सफाया ही कर दिया होता यदि यह बाबा यहाँ आकर धरना देकर न बैठ जाता," तो वे भी महात्मा जी को जी भर कोसते। वे कहते "न मालूम इस बुढ़ऊ को क्या हो गया है, लाखों हिन्दुओं की हत्या होती देखकर भी इसका दिल नहीं पसीजता।"

एक दिन शाम के समय महाशय जी भी अपने साथी कुछ शरणार्थियों के साथ महात्मा जी की प्रार्थना में सम्मिलित होने गये, वे दत्तचित्त होकर महात्मा जी के मुख से निकलते हुए एक-एक शब्द को ध्यान से सुनते रहे। प्रार्थना के बाद महाशय जी के मन में उथल पुथल मच रही थी। वे अपने स्थान से उठकर जब बाहर जाने लगे तो अकस्मात् ही उनके मुख से ये शब्द निकल पड़े कि "भाई! कहते तो सब ठीक हैं—पर वह महात्मा ठहरे, हम साधारण आदमी हैं।" महात्मा जी के उपदेश ने महाशय कर्त्तारामं के जीवन की दिशा को ही बदल दिया। वे अपने साथी शरणार्थियों को यही समझाने का प्रयत्न करते कि हमें शरणार्थियों की समस्या को हल करने के लिये अपनी सरकार के साथ पूरी तरह सहयोग करना चाहिये।

× × ×

जन्माष्टमी के जलूस से देहरादून में भी अकस्मात् साम्प्रदायिक आग भड़क उठी। दो तीन दिन में ही शहर मुसलमानों से खाली हो गया। मुसलमानों के ख़ून के प्यासे सिख तथा हिन्दू, टोलियाँ बना बनाकर इधर-उधर गाँवों में घूम-घूमकर मुसलमानों का सफाया करने लगे।

कुछ दिन बाद पश्चिमी पंजाब में अपना घरबार, बीबी, बच्चे तथा सर्वस्व लुटाकर आये हुए हिन्दू सिखों का साठ सत्तर आदमियों का एक जत्था हाथों में कुल्हाड़ियाँ, भाले, तलवारें तथा बन्दूकें लिये हुए, 'हर हर महादेव' 'सत श्री अकाल' तथा 'महात्मा गाँधी की जय' के नारों से आसमान गुंजाता हुआ भड़ुआ गाँव की ओर जा रहा था। गाँव के मुख्य रास्ते से वे लोग जब अन्दर घुसने लगे तो पहले उनका सामना हिन्दू नौजवानों की एक टोली से हुआ जो उनका रास्ता रोककर खड़ी हुई थी। हमलावरों के नेता सरदार उद्दमसिंह ने—जिनकी आँखें प्रतिहिंसा की आग से लाल हो रही थीं—कड़कती हुई आवाज में कहा "भाइयो! हमें गाँव में जाने का रास्ता दे दो।" "आप लोग चाहते क्या हैं" एक नौजवान ने पूछा। "सूअरों का सफाया" एक सरदार ने जवाब दिया। "इन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?" नौजवानों की टोली के नेता ने पूछा।

"इन सूअरों ने पश्चिमी पंजाब में हमारे हजारों बेगुनाह भाइयों को बेरहमी से कत्ल किया है, हमारी माताओं-बहनों और बेटियों को नंगा करके उनका जलूस निकाला और उनका सतीत्व नष्ट करके उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर अपनी राक्षसी प्यास को बुझाया है। हमारे लख्ते जिगर मासूम बच्चों को उनकी माताओं के सामने टुकड़े-टुकड़े कर सलाइयों पर भूनकर माताओं को जबर्दस्ती खाने को विवश किया है। हमारे कानों में आज भी उन मासूम बच्चों के रोने बिलखने की आवाज, उन अबलाओं का चीत्कार और हजारों बेगुनाह भाइयों का हाहाकार गूंज रहा है। हमारी ये किरपानें इन पाजियों के खून से अपनी प्यास बुझाकर ही शान्त होगी। जब तक हम वैसा ही मजा इनको भी न चखा लेंगे, तब तक हमें चैन न पड़ेगी।"

"क्या आप मेहरबानी करके हमें बतायेंगे कि ये सब गुनाह क्या इस भडुआ गाँव के मुसलमान भाइयों ने किये हैं?" एक नौजवान ने पूछा। "ये सब एक ही थैली के चट्टे बट्टे हैं, इन्होंने ही अपने वोट मुसलिम लीग को देकर पाकिस्तान कायम कराया है, जिसका यह नतीजा हमें भुगतना पड़ा है।"

"बदले में इनका खून बहाकर क्या आपके भाईबन्द वापिस आ जायेंगे। इनकी बहू बेटियों की बेइज्जती करने से आपकी बहू बेटियों की बेइज्जती का प्रतिकार हो जायेगा? क्या आप लोग वही काम करके अपने पवित्र हिन्दू धर्म के नाम को उज्ज्वल रख सकेंगे।"

"हमारे दिल के दर्द को आप क्या जानें, हम पर जो बीती है, यदि वैसी ही आप पर भी बीती होती तो शायद क्या, निश्चय ही आप हमसे इस प्रकार बातचीत न करते। हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि हमारा रास्ता छोड़ दें और हमें अपने मन की करने दें।"

"हम भी आपके ही भाई बन्द हैं। हम भी अपना घरबार तथा सर्वस्व लुटाकर यहाँ आये हैं। हमने भी अपनी आँखों से अपनी माताओं और बहिनों का सतीत्व लुटते देखा है। हमारे भी सम्बन्धियों ने गुण्डों की पाशविकता का शिकार बनकर प्राण दिये हैं। पर हम आपके मार्ग को अपने देश के लिए लाभदायक नहीं समझते, जरा ठंडे दिल से विचार कीजिये, इसका नतीजा क्या होगा। मुसलमानों ने कलकत्ते में हिन्दुओं पर अत्याचार किया, बाद में हिन्दुओं ने उसका बदला उतारने के लिये उनका खून बहाया। इसका बदला उन्होंने नोआखाली में उतारा, नोआखाली का बदला हिन्दुओं ने बिहार में और गढ़गंगा के मेले में उतारा। फिर मुसलमानों ने पश्चिमी पंजाब में कत्ले आम करके उसका बदला लिया तो हमारे भाइयों ने पूर्वी पंजाब में उसका जवाब दिया। भला आप ही बतलाइये कि यह दुश्चक्र—बदले के बाद बदला—आखिर कहाँ जाकर खत्म होगा। आप लोग मुसलमानों की बहू-बेटियों को कत्ल कर उन्हें नंगा तथा बेइज्जत करके बदला उतारना चाहते हैं पर जरा सोचिये तो सही कि क्या आप इस प्रकार हिन्दुत्व की रक्षा करने के बजाय उसी का नाश नहीं कर रहे? क्या आपकी हिन्दू संस्कृति यही है? उन्होंने आपकी थाली में मांस खाया है तो क्या आप उनकी थाली में पाखाना खाकर उनसे बदला उतारना चाहते हैं?"

"बस रहने दीजिये अपने उपदेश को," गुस्से में आकर सरदार उद्दमसिंह ने कहा—"जब तक हम इस गांव के एक-एक मुसलमान को खत्म न कर लेंगे तब तक हम वापिस न आयेंगे।"

"यदि आपकी यही मंशा है तो ये काम आप मेरे लिये छोड़िये। मैंने भी अपने भाइयों-बहिनों को, अपने पिताको, अपनी पत्नी को और अपने इकलौते बच्चे

को इन आँखों से टुकड़े-टुकड़े होते देखा है। मैंने भी अपने गाँव के ६०० हिन्दू सिख भाइयों को गुण्डों के हाथों से बलिदान होते देखा है। मैं ही अभागा अकेला जैसे तैसे बचकर, एक मुसलमान दर्वेश का रूप धारण कर, भीख मांगता हुआ बचकर आ सका हूँ। अपने भाइयों की लाशों के पास खड़े होकर मैंने एक दिन प्रतिज्ञा की थी कि जब तक कम से कम ५०० मुसलमानों को खत्म न कर लूंगा, सुख की नींद न सोऊँगा। आज मेरी प्रतिज्ञा पूरी होने का समय आ गया है। आप लोगों से मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि आप लोग अपने-अपने घरों को वापिस चले जायें। आज से एक सप्ताह बाद आप एक भी मुसलमान को इस गाँव में न पायेंगे।" यह कहकर महाशय कर्त्ताराम ने बूढ़े सरदार उद्दमसिंह के पैरों में अपनी पगड़ी रख दी। सरदार की टोली जिधर से आई थी, उधर ही वापिस लौट गई।

× × ×

महाशय कर्त्ताराम को इस गांव में आये हुए लगभग एक महीना हो चुका है। गाँव के छोटे बड़े, हिन्दू मुसलमान सब उनके चरित्र के कायल हैं और उन्हें बड़ी श्रद्धा से देखते हैं। जब देहरादून शहर में दंगा हुआ तब उन्होंने अपने गाँव के हिन्दू तथा मुसलमान बुजुर्गों को इकट्ठा कर एक दूसरे की रक्षा का वचन लिया था। इस वचन का निभाव इन्होंने अपनी जान को जोखिम में डालकर भी जिस खूबी से किया, उसका प्रभाव गाँव के मुसलमानों पर यह पड़ा कि उनकी जरा सी प्रेरणा से उस गाँव के सब मुसलमान स्वेच्छा से अपना मजहब छोड़कर हिन्दू धर्म स्वीकार करने को तैयार हो गये। दो दिन बाद शुद्धि संस्कार बड़ी धूमधाम से संपन्न हुआ। हिन्दू भाइयों ने सदियों से बिछुड़े अपने भाइयों को छाती से लगाया और उनके हाथों से पानी पी कर अपने प्रेम का परिचय दिया। सातवें रोज सरदार उद्यमसिंह की टोली भडुआ गाँव में पहुंची तो गांव की धर्मशाला में महाशय कर्त्ताराम ने उनका स्वागत किया।

"कहिये, आपको अपने मनसूबे में कहाँ तक सफलता मिली? हम उम्मीद करते हैं कि आपने इस गाँव से सूअरों का बिल्कुल सफाया कर दिया होगा?"

"एक दम सफाया, आप देखकर हैरान होंगे कि आज इस गाँव में एक भी मुसलमान नहीं बचा है।"

सरदार उद्दमसिंह को गाँव में जाकर मालुम हुआ कि महाशय कर्त्ताराम ने किस प्रकार गाँव के सब मुसलमानों को हिन्दू बनाकर अपनी ५०० मुसलमानों को खत्म करने की प्रतिज्ञा पूरी की है।

× × ×

आज भडुआ गाँव में सर्वत्र मातम छाया हुआ है। भडुआ गाँव के निवासियों ने जब यह सुना कि महाशय कर्त्ताराम कश्मीर के हमलावर कबाइलियों के अत्याचार का प्रतिकार करने के लिये कश्मीर जा रहे हैं तो उनके दुःख का कोई अन्त न रहा। गाँव के बड़े बूढ़ों की एक टोली जब उनके पास इस निर्णय को बदलने की प्रार्थना करने गई तो उन्होंने आँखों में आँसू भरकर गदगद कंठ से कहा "भाइयो, जब मदांध मुसलमानों ने मेरे गाँव के ५०० आदमियों को बेरहमी से कत्ल किया था तब मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं भी कम से कम ५०० मुसलमानों का अन्त करके ही दम लूँगा। यद्यपि मेरी यह प्रतिज्ञा एक तरह से पूरी हो चुकी है, तथापि मेरे मन को अभी पूर्णतया शांति नहीं मिली। अपनी इस प्रतिहिंसा को दूसरे रूप में पूर्ण करने के लिये ही मैंने यह निश्चय किया है।" अगले ही दिन महाशय जी हवाई जहाज से कश्मीर रवाना हो गये।

★

आर्यसमाज और बलिदान भावना

सत्येन्द्रपालसिंह

आर्यसमाज एक धार्मिक संगठन है। वास्तविक धर्म मानव में आत्म त्याग के भावों को जाग्रत करता है। धर्म का अनुसरण स्वाभाविक रूप से ही पर दुःख कातरता और मनुष्य मात्र में भ्रातृत्व की भावनाओं का जागरण करता है! वस्तुतः किसी भी व्यक्ति का वास्तविक धर्मित्व इसी धर्म में है और किसी व्यक्ति की धार्मिकता की वस्तुतः यही कसौटी है।

आर्यसमाज का उद्घोष

आर्यसमाज उद्घोषक है वैदिक धर्म के प्रचारका। वेद का धर्म ही वह शुद्ध एवम् पूर्ण धर्म है कि जिसका इस संसार की उत्पत्ति के आरम्भ में भगवान ने मानव को उपदेश प्रदान किया था। अतः आर्यसमाज द्वारा प्रचारित इस शुद्ध धर्म में तो विश्व बन्धुत्व एवम् आत्म त्याग की भावनाओं का प्रस्फुरण और भी अधिक अनिवार्य है। इसलिए वैदिक धर्म के प्रचारक आर्यसमाज के अनुयायियों में इस भावना का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। यदि धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर कोई मानव दूसरों के कल्याणार्थ अग्रसर होता है तो उसके लिए अपनी शक्ति और सामग्री का कम अथवा अधिक त्याग करना नितांत आवश्यक है, स्वपदार्थों को त्यागे बिना हम दूसरों का कल्याण करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। सुख साधन ही उन्हें उपलब्ध करा सकते हैं। सभी प्रकार के त्याग में हमें स्वार्थ और अपनी सुख सुविधाओं को छोड़ना होता है। चाहे जिस प्रकार का भी त्याग क्यों न हो हमें अपनी ममत्व प्रधानता को दबाना ही पड़ता है। अतएव स्वतः प्रमाणित है कि सब प्रकार के त्याग की नींव में आत्म-त्याग की भावना ही सक्रिय रहती है। जिस समय आत्मत्याग की यही भावना इस सीमा तक बलवती हो जाती है कि आवश्यकता पड़ने पर व्यक्ति अपने प्राणों तक का उत्सर्ग करने को उद्यत हो जाते हैं, उसी पराकाष्ठा के आत्म-त्याग को सामान्य भाषा में 'आत्माहुति' अथवा 'बलिदान' की संज्ञा दी जाती है।

वास्तविक हित साधना

सामान्यतः जब तक अन्न, वस्त्र, धन इत्यादि स्थूल सामग्री द्वारा कष्टापन्न व्यक्तियों के कष्टों का निवारण कर उनके लिए सुख सुविधाएँ जुटाने का प्रयास किया जाता है, तब तक 'बलिदान' की नौबत प्रायः नहीं आया करती, किन्तु अनेक बार स्थितियाँ इस प्रकार की भी करवट लेती हैं कि लोगों की वास्तविक हितसाधना हेतु उनके प्रचलित विचारों को परिवर्तित कर उनके स्थान में नए विचार देना आवश्यक होता है। जनता के कतिपय कष्ट अज्ञान पर आधारित होते हैं। ऐसे कष्टों का निवारण उस अज्ञान को दूर किये बिना हो पाना असंभव होता है। किन्तु मानव स्वभाव की यह दुर्बलता है कि जब किसी को उसकी भूल से अवगत कराया जाता है तो प्रायः वह अपनी भूल की ओर संकेत करने वाले से ही चिढ़ जाता है। इतना ही नहीं कई बार तो वह अपनी भूल की ओर संकेत करने वाले का अनिष्ट करने को भी सिद्ध हो

जाता है। और यदि भूलों की ओर संकेत करने वाला अपने पथ पर अविचल रहे तो उससे वह व्यक्ति यहाँ तक भी क्रुद्ध हो जाता है कि भूल का दिग्दर्शन कराने वाले के प्राणों तक का हरण करने को तैयार हो जाता है। जो व्यक्ति सच्चे धर्म की भावना से प्रेरित होकर किसी की भूलों की ओर संकेत करता है वह ऐसे लोगों के क्रोध से भी हतप्रभ नहीं होता। क्योंकि उसके समक्ष तो प्रभुपुत्रों अर्थात् अपने भाइयों के दुःखों और कष्टों के निवारण को ही अपना जीवन ध्येय बनाया है? यह कार्य निवारण अपने बन्धुजनों में प्रचलित अज्ञान की भावनाओं को दूर करने से ही संभव है। अतएव वह अपनी सत्य और निर्भीक भावना का प्रचार निर्भीक भाव से करने में रत रहता है। यदि उसके अज्ञानी बन्धु क्रोध के वशीभूत उसके प्राणों को भी ले लेने के इच्छुक हों तो वह इसके लिए भी उद्यत रहता है। अज्ञान के तिमिर को पूर्णतः विदीर्ण कर ज्ञान का पावन प्रकाश फैलाने हेतु वह प्रसन्नमना स्वयं का बलिदान देने के लिए भी तैयार रहता है। जब स्थितियाँ इस प्रकार की हो जाती हैं तो धार्मिक पुरुषों के लिए अपने जीवन की बलि समर्पित कर देने के अतिरिक्त और कोई विकल्प ही नहीं रह जाता।

एक और अवसर भी

एक और भी ऐसा अवसर आता है कि जब मानव को बलिदान की सिद्धता करनी पड़ती है। प्रत्येक व्यक्ति और मानव समाज के कतिपय जन्मसिद्ध अधिकार छिन जाते हैं तो उस स्थिति में तो कोई ऐसा मानव समाज वास्तविक अर्थों में मानव समाज कहलाने का भी अधिकारी नहीं रहता। कई बार मदोन्मादी और स्वार्थान्ध व्यक्ति इन अधिकारों पर कुठाराघात करने को तत्पर हो जाते हैं। उस स्थिति में अपने अधिकारों की रक्षार्थ हमें भारी से भारी आत्मत्याग करने की आवश्यकता पड़ जाती है। ऐसे अवसर पर धन-सम्पदा का तो कहना ही क्या अपने प्राणों का मोह त्यागकर भी ऐसे अवसरों पर अपने जीवन का बलिदान सच्चे धार्मिक व्यक्तियों को चढ़ाना पड़ता है। ऐसे अवसर पर सत्य धर्म का उपासक हँसते हँसते अपना जीवन प्रसून समर्पित कर देता है।

आर्यसमाज द्वारा महान त्याग

वेद के धर्म का प्रचार करने हेतु संकल्पबद्ध आर्यसमाज धार्मिक भावना से प्रेरित होकर प्रभु की संतानों को सुख-साधना करने के लिए एवम् अपने जन्मसिद्ध अधिकारों की रक्षार्थ सदैव ही सब प्रकार का त्याग और बलिदान करता रहा है। आर्यसमाज के अनेक अनुगामियों ने समय की पुकार पर इन कार्यों के लिए अपने प्राणों की भी हँसते हँसते बलि चढ़ाई है। आर्यसमाज के लिए त्याग और बलिदान के पथ पर चलना एक स्वाभाविक सी प्रक्रिया रहती है। क्योंकि उन्हें महर्षि स्वामी दयानन्द ने जिस वेद के धर्म का प्रचार और प्रसार करने का निर्देश दिया है, वह वेद स्वयं पुकार पुकार कर कह रहा है —

ये चित्पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजां अपि गच्छतात् स्वाहा॥
तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा॥

ये युह्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्त्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् स्वाहा ।।

अथर्व १८।२।१५-१७

अर्थात् जो तुमसे पूर्व सत्य का सेवन करने वाले, सत्य को प्रकट करने वाले, सत्य को बढ़ाने वाले, तपों को करने और तप से उत्पन्न होने वाले ऋषि लोग हैं, हे पुरुष ! तू स्वयं को संयमी और आत्मजयी (यम) बनाकर उन ऋषियों की पंक्ति में जा ।" "तप के कारण जिन्हें कोई दबा नहीं सकता है, तप द्वारा जिन्होंने आनंद प्राप्त किया है, जिन्होंने तप को महिमाशाली बनाया है, हे पुरुष ! तू उन लोगों की पंक्ति में जा ।" "जो धर्म युद्धों में लड़ते हैं, जो शूरवीर अपने शरीरों का भी त्याग कर देते हैं और जो हजारों का दान करते हैं, हे पुरुष ! तू उन लोगों की पंक्ति में जा ।"

वेद का निर्देश

जो भी व्यक्ति त्याग और बलिदान की भावनाओं को जाग्रत करने वाले वेद के इन उदात्त उपदेशों को पढ़ेंगे और इनका प्रचार करेंगे उनके लिए भारी से भारी आत्मत्याग भी एक अति सरल सी बात है ।

वेद ने प्रभु के उपासक के मुख से यह भी कहलाया है—

तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । ऋग्० ।१।२४।११

अर्थात्—"हे प्रभु ! यह आपका उपासक यजमान अर्थात् यज्ञ का जीवन व्यतीत करने वाला होकर सर्व प्रकार की हवियों के दान द्वारा सर्व प्रकार के त्यागों और बलिदानों के द्वारा आपके दर्शनों की आशा रखता है ।"

सामान्य त्याग के जीवन को मन्त्र में यज्ञ का जीवन कहा गया है और आत्माहुति अथवा बलिदान के जीवन को 'हविर्दान' का जीवन कहा गया है । हवि का शब्दार्थ तो त्याग ही होता है । यज्ञाग्नि में दी जाने वाली सामग्री की आहुतियों को हवि कहते हैं । यज्ञ की अग्नि हवि कुण्ड में पड़कर स्वयं को सर्वथा स्वाहा कर देती है । जिनके जीवन में यज्ञ की अग्नि की हवि सरीखा चरम सीमा का त्याग आ जाता है—जो अपना सब कुछ स्वाहा करके अपने शरीर, अपने जीवन की, भी आहुति समर्पित करने को तत्पर रहते हैं, उनके जीवन को हविर्दान का जीवन कहा जाता है । ऐसे व्यक्ति की जो लोक कल्याण और कर्त्तव्य पालन हेतु अपने जीवनों तक की हवि समर्पित करने को तैयार रहते हैं, वेद कहता है, प्रभु दर्शन भी ऐसी ही आत्माओं को मिल सकता है ।

अतएव जो लोग वेद की शिक्षाओं से प्रेरित बलिदानी भावनाओं से अनुप्राणित करने वाले इस प्रकार के उपदेशों का मनन करेंगे उनके लिए ऐसा कौन सा त्याग और बलिदान हो सकता है, जिसे वे क्षण भर में ही करने के लिए प्रेरित न हो जाएँगे ? अतएव आर्यसमाज की शिक्षाओं को जिसने जीवन में उतारा हो वह कर्त्तव्यपूर्ति हेतु सर्वस्व समर्पित कर सकता है !

—अरविन्द

क्षमा का आदर्श

चन्द्रमा धीर गति से मेघ के अन्तराल में लुकता-छिपता, तिरता चला जा रहा था। नीचे, कलकल करती, समीर से सुर मिलाती, नृत्य करती, बल खाती, सरिता प्रवाहित हो रही थी। पृथ्वी का सौन्दर्य अपूर्व हो उठा था ज्योत्स्ना और अन्धकार के मिलन से।

चतुर्दिक् ऋषियों के आश्रम थे। प्रत्येक आश्रम के समक्ष नन्दन वन की छटा भी तिरोहित हो रही थी। पुष्पित लता-द्रुमों से घिरी ऋषि-कुटी एक अनुपम श्री से सुशोभित थी।

एक दिन ऐसी ज्योत्स्ना-पुलकित रात्रि में ब्रह्मर्षि वसि ठ देव अपनी सहधर्मिणी अरुन्धति से कह रहे थे—

'देवी ! ऋषि विश्वामित्र से थोड़ा नमक ले आओ !'

इस उक्ति को सुनते ही देवी अरुन्धति विस्मित हो उठी और उन्होंने वसिष्ठ से पूछा—'प्रभु, यह कैसी आज्ञा है आपकी ! मैं कुछ भी नहीं समझ पा रही हूँ। जिसने हमें शतपुत्रों से वंचित किया है, आप उसी को·········

इतना कहते-कहते देवी बिलख उठी। उनके नेत्रों के समक्ष पूर्व स्मृतियाँ सजग हो उठीं। शांति का वह अपूर्व आलय, गम्भीर हृदय व्यथा से भर उठा। वे बोल उठी—'मेरे शतपुत्र चाँदनी रात में वेदगान करते हुए विचरते थे। मेरे सौ-के-सो पुत्र वेदविद् एवं ब्रह्मनिष्ठ थे। मेरे ऐसे पुत्रों को उसने मार डाला और आप मुझे उसी के यहां नमक लाने के लिए भेज रहे हैं। मैं तो किंकर्त्तव्य विमूढ हो रही हूँ।'

धीरे-धीरे महर्षि का श्रीमुख चमक उठा और उनके सागरोपम हृदय से गूंज उ ा एक वाक्य 'देवी ! मैं उसे स्नेह जो करता हूँ।'

यह सुनते ही अरुन्धति और भी अधिक विस्मित हो उठी और कहा—'यदि आप उसे स्नेह करते हैं तो उसे ब्रह्मर्षि कहने से तो सारा बखेड़ा निपट गया होता और मुझे अपने सौ पुत्रों से वंचित नहीं होना पड़ता।'

महर्षि के श्रीमुख पर अनोखी कांति सुशोभित हो रही थी। वे बोले—'उसे स्नेह करता हूँ, तभी तो मैं उसे ब्रह्मर्षि नहीं कहता। मैंने उसे ब्रह्मर्षि सम्बोधित नहीं किया है, इसीलिए तो उसके ब्रह्मर्षि होने की आशा है।'

आज विश्वामित्र क्रोध से सतप्त और ज्ञान-शून्य हैं। आज उनका मन तपस्या से उचटा हुआ है। अतएव वे इस सकल्प के साथ अपने आश्रम से निकले हैं कि यदि ऋषि वसिष्ठ ने आज भी ब्रह्मर्षि कहकर सम्बोधित नहीं किया तो उनके प्राण ही ले लेंगे। संकल्प को क्रियान्वित करने के लिए हाथ में तलवार लेकर ही तो वे कुटिया से निकले थे।

वे वसिष्ठ देव की कुटी के समीप रुक गए। उन्होंने खड़े-खड़े ही वसिष्ठ देव की सारी बातें सुनीं तो मुट्ठी में बँधी तलवार हाथ में शिथिल पड़ गयी। वे सोचने लगे—हाय, अनजाने मैंने किसके निर्विकार हृदय को व्यथा पहुँचाने की कुचेष्टा की है।'

हृदय में वे एक दुरूह पीड़ा अनुभव करने लगे। उनका हृदय अनुताप से दग्ध होने लगा। वे दौड़े और जाकर ऋषि वसिष्ठ के चरणों में गिर पड़े। कुछ क्षण तक तो उनके मुख से एक भी शब्द न निकल सका। फिर बोले—'क्षमा कीजिए ! किन्तु

मैं तो क्षमा माँगने योग्य भी नहीं हूँ।' गर्वित हृदय इससे अधिक और कुछ न बोल पाया।

किन्तु वसिष्ठ ने क्या किया ?

उन्होंने दोनों हाथों से विश्वामित्र को उठाया और बोले—'उठो, ब्रह्मर्षि उठो।'

और भी अधिक लज्जा से गड़े विश्वामित्र बोले 'प्रभो ! क्यों लज्जित कर रहे हैं, मुझे आप ?'

वसिष्ठ बोले—'मैं कभी झूठ नहीं बोलता—आज आप ब्रह्मर्षि हो गए हैं। आज आपने अभिमान त्याग दिया अतः आप ने ब्रह्मर्षि पद प्राप्त कर लिया है।'

विश्वामित्र ने कहा 'आप मुझे ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दीजिए।' अनन्तदेव के पास जाओ। वे ही आपको ब्रह्मज्ञान की शिक्षा प्रदान करेंगे। वसिष्ठ देव ने उत्तर दिया।

विश्वामित्र अनन्तदेव की सेवा में उपस्थित हुए।

अनन्त देव बोले—'मैं तुम्हें ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दे सकता हूँ, यदि तुम इस पृथ्वी को अपने सिर पर धारण कर लो।

तपोबल के गर्व से चूर विश्वामित्र ने कहा—'मैं उसे अभी धारण किये लेता हूँ।'

शून्य में चक्कर काटते-काटते पृथ्वी गिरने-सी लगी।

विश्वामित्र चिल्लाये—'अपनी सारी तपस्या का फल अर्पण करता हूँ। पृथ्वी, तू रुक जा।'

पृथ्वी फिर भी स्थिर न हुई।

ऊँची आवाज में अनन्तदेव ने पुकारा—विश्वामित्र ! अब तक तुमने इतनी तपस्या नहीं की है, जिसके बल पर पृथ्वी धारण कर सको। क्या कभी साधु-संग किया है। किया है तो उसका फल अर्पण करो।'

'कुछ पल वसिष्ठ का साथ था।'

'तब उसी का फल अर्पण कर दो।'

'अच्छा उसी का फल अर्पित करता हूँ।'

और पृथ्वी धीरे-धीरे स्थिर होने लगी।

तब विश्वामित्र बोले—'अब दीजिये मुझे ब्रह्मज्ञान दीजिये।'

अनन्तदेव बोले 'मूर्ख विश्वामित्र ! जिनकी क्षणभर की सगति के फल से पृथ्वी स्थिर हो सकती है, उन्हें छोड़कर तुम ब्रह्मज्ञान पाने हेतु मेरे पास आये हो ?'

विश्वामित्र तिलमिला उठे और सोचने लगे कि 'क्या वसिष्ठ देव ने मेरी प्रतारणा की है ?'

वह अविलम्ब उनके पास पहुंचे और बोले—'आपने क्यों की है मेरी प्रतारणा ?'

वसिष्ठदेव ने अति धीर गम्भीर भाव से उत्तर दिया—यदि उस समय मैंने तुम्हें ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दी होती तो तुम विश्वास न करते पर अब विश्वास करोगे।'

वसिष्ठ देव ने विश्वामित्र को ब्रह्मज्ञान दे दिया।

ऐसे थे ऋषि आर्यावर्त में, ऐसे थे साधु भारत में। तपस्या का ऐसा प्रताप था कि पृथ्वी का भार भी धारण किया जा सकता था। भारत में पुनः ऐसे ऋषियों का जन्म हो रहा है, जिनके प्रभाव से आर्यत्व की प्राचीन आभा पुनः प्रदीप्त होगी।

□ प्रो० मैक्समूलर □ के वेद भाष्य □ का मूल उद्देश्य

"सुधीन्द्र"

आज अपने देश में प्रायः विद्या विशारद एवं संस्कृतज्ञ ही नहीं अपितु सामान्य नागरिक भी मैक्समूलर के नाम से परिचित हैं और कुछ उसे भारत का अत्यन्त हितैषी भी मानते हैं, कुछ यहाँ तक कहते नजर आते हैं कि जर्मन होते हुए भी उसने हमारे वेदादि शास्त्रों का अंग्रेज में भाष्य करके बड़ा उपकार किया है। पाश्चात्य जगत् में आज जो भी वैदिक वाङ्मय का प्रचार है वह प्रो० मैक्समूलर की सतत साधना एवं अगाध निष्ठा का परिणाम है। विदेशों में संस्कृत एवं वेदादि शास्त्रों में अध्ययन की रुचि मैक्समूलर की प्रेरणा का फल है, जबकि वस्तुतः पाश्चात्यों के इन धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन का मूल उद्देश्य कुछ और ही है।

निस्सन्देह प्रो० फ्रेडरिक मैक्समूलर ने वेदों, भाषा विज्ञान, संस्कृत साहित्य भारतीय दर्शन एवं धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन पर विशाल साहित्य सृजन किया है। वेदों का मुद्रण कराने का श्रेय उनको है। इसके अतिरिक्त उन्होंने ओक्सफोर्ड विश्व विद्यालय (१८४७-१९००) से "पूर्व की पवित्र पुस्तकें" ग्रंथमाला के अन्तर्गत पच्चीस ग्रंथों सम्पादित करके पचास भागों में प्रकाशन कराया है। ये पुस्तकें वेद, उपनिषद्, गीता, वेदान्त से लेकर जैन, बौद्ध, इस्लाम और चीनी धर्म से सम्बन्धित हैं। आखिर इन धार्मिक ग्रंथों पर इतने विशाल साहित्य सृजन में प्रो० मैक्समूलर का मूल उद्देश्य क्या था? क्या वे वेदों की सार्वभौमिक, सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक शिक्षाओं से पाश्चात्य जगत् को अवगत करना चाहते थे? या एक निष्पक्ष शोध कर्त्ता की दृष्टि से केवल उनका तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते थे? या इस सब के पीछे मूल भावना कुछ और ही थी। इन्हीं कुछ प्रश्नों पर यहाँ संक्षेप में विचार किया जायेगा।

इन प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत करने से पहिले मैं आपका ध्यान १९वीं सदी में भारत की तत्कालीन आन्तरिक एवं राजनैतिक अवस्था की ओर आकर्षित करना चाहूँगा।

१९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इधर मैकाले अंग्रेजी में शिक्षा द्वारा भारतीय नवयुवकों को यहां की प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति से दूर ले जाने का प्रयत्न कर रहा था तो उसके विपरीत भारतीय जन समूह अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की तैयारियाँ कर रहा था, जिसकी चिनगारियाँ १८५७ के स्वातंत्र्य संग्राम में प्रस्फुटित हुई। जिस दबाना बड़ा मुश्किल हो रहा था। अतः मैकाले आदि शासकों ने सोचा कि इन क्रान्ति को केवल सैनिक शक्ति से ही नहीं बल्कि तोड़ फोड़ की नीति से भी दम

करना चाहिये। विभाजन और शासन जो पुरानी रोमन नीति है, भारत के लिये वही हमारी भी होनी चाहिये। इसका प्रमाण एशियाटिक जनरल (१८२१), ले० जौन कुक (१८५७) और लार्ड एलफिस्टन् (१८५९) आदि के लेखों से स्पष्ट मिलता है। धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में इस नीति को क्रियान्वित करने के लिये लार्ड मैकाले एक ऐसे व्यक्ति की तलाश में थे जिसका अंग्रेजी और संस्कृत दोनों ही भाषाओं पर समान अधिकार हो। ताकि वह अपनी प्रवाहमयी लेखनी से भारतीयों के दिल और दिमाग में उनके धर्म और संस्कृति के प्रति अश्रद्धा एवं हीन भावना पैदा कर सकें। और भारत के दुर्भाग्यवश उसे ऐसे समय में पैरिस विश्वविद्यालय में संस्कृत प्रोफेसर ओगिन वरनोफ से ऋग्वेद अध्ययन करता हुआ एक ऐसा व्यक्ति मिल गया वह था फ्रैडरिक मैक्समूलर, २८ दिसम्बर १८५५, की लार्ड मैकाले-मैक्समूलर भेंट भारत विरोधी साहित्य सृजन के नींव की तारीख थी, मैक्समूलर ने स्वयं स्वीकार किया कि मैकाले से मिलने के पश्चात् वह अधिक गम्भीर हो गया। (मैक्समूलर की जीवनी और पत्र ४, १८३२)

मैक्समूलर को आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में एक पद दिया गया, वस्तुत: विश्वविद्यालय में सस्कृत विभाग, भारतीय संस्कृति के ग्रंथों का अनुवाद करने के लिये स्थापित किया गया था, ताकि भारत में धर्म परिवर्तन का कार्य सरलता पूर्वक चलाया जा सके। यहाँ संस्कृत प्रोफेसर के लिये बौडन-चैयर, इसी उद्देश्य से स्थापित की गई थी जिसके स्थापक कर्नल बौडन की १५ अगस्त सन् १८११ की यही इच्छा थी जिसे मोनीयर विलियम्स ने अपनी संस्कृत इंगलिश शब्द कोष की भूमिका १८९९, में स्पष्ट व्यक्त किया है। यहाँ आकर मैक्समूलर ने योजनाबद्ध कार्य प्रारंभ कर दिया। सर्वप्रथम उन्होंने ऋगवेद का मुद्रण कराया। तत्पश्चात् उसका भाष्य सायण शैली पर प्रारम्भ किया, परन्तु हम देखते हैं कि अनेकों भौतिक सिद्धान्तों पर मैक्समूलर सायण से भिन्न हैं। जैसे वेदों का रचना काल. वैदिक देवतावाद, हेनोथी इज्म आदि जो बाद में असत्य सिद्ध हुए, मैक्समूलर की वैदिक वाङ्मय, को नष्ट करने एव उसमें भारतीयों की अश्रद्धा उत्पन्न करने की भावना की झलकियाँ उनके साहित्य, जीवनी एवं पत्रों से स्पष्ट होती हैं।

यदि हम प्रो० मैक्समूलर के साहित्य का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करें तो हमें एक एक विचित्र विरोधाभास प्रकट होता है, एक तरफ वे भारतीय धर्म ग्रंथों एव वेदादि शास्त्रों की अगाध निष्ठा से प्रशंसा करते नजर आते हैं और विश्व इतिहास भाषा विज्ञान एवं विकास की प्रगति में इन ग्रंथों का महत्त्व पूर्ण योग मानते हैं तो दूसरी तरफ बड़ी ही व्यंगात्मक भाषा में प्रहार करते हुए भी भारत की प्रशंसा में उन्होंने पर्याप्त लिखा है, उदाहरणार्थ 'दी वेदाज' की भूमिका में वे लिखते हैं कि यह विचार नहीं करना चाहिये कि ऋग्वेद के जर्मन, फ्रेन्च, और अंग्रेजी में अनेकों भाष्य हुए हैं ? अत: हमने वेदों की समस्त शिक्षाओं को समझ लिया है, वस्तुतः इसके अलावा प्रत्येक भाष्य में अनुवादक के प्रस्तावित विचार है। हम अभी वैदिक साहित्य की ऊपरी सतह पर ही घूम रहे हैं। यह उनकी वेद की अन्तरात्मा को समझने की जिज्ञासा को प्रकट करता है। वे वेद पठन पाठन की आवश्यकता को इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

मैं मानता हूँ कि जो स्वयं अपना, अपने पूर्वजों और अपने इतिहास का अध्ययन करना चाहता है उसके लिये वेद आवश्यक है। आर्य जाति के अध्ययन के लिये वेद से अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ नहीं हैं। "भारतीय संस्कृति के अध्ययन

के लिये वेद क्यों आवश्यक है", इसका उत्तर उन्होंने 'इण्डिया वाट इट केन टीच अस' में कुछ लोगों से पूछे जाने पर कि वेदाध्ययन एवं मुद्रण से हमें, मिशनरियों या जो भारतीयों को प्रभावित करना चाहें उन्हें क्या लाभ है, उन्होंने बताया कि क्योंकि वेद की महिमा अन्य समस्त प्राचीन ग्रंथों जैसे मनु स्मृति, महाभारत आदि में गाई गई है, वेद ही इन सबका आधार है। इस प्रकार की प्रशंसा के अलावा वहाँ ऐसे भी अनेकों उदाहरण हैं जिनसे सिद्ध होता है कि उनके हृदय में वैदिक वाङ्मय के प्रति श्रद्धा नहीं है और वे किसी और ही उद्देश्य से वैदिक वाङ्मय पर विशाल साहित्य निर्माण में संलग्न हैं। उदाहरणार्थ 'वाट इस वेद' भाषण में वेकहते हैं कि वैदिक ऋचाएं बचकानी, मुश्किल, सामान्य और निम्न स्तर की हैं। ५० वर्ष के वेदाध्ययन से उन्हें यही मिला, वे आगे कहते हैं कि उस समय के लोगों ने सर्वप्रथम, सूर्य, चन्द्र, नदी. पर्वत, वायु, पृथ्वी आदि देखे अतः उनसे भयभीत होकर अपनी रक्षा के लिये उनसे प्रार्थना करने लगे यही विषय बार बार दोहराया गया है। वेद बहुदेवतावाद से भरे हुए हैं, और जड़ शक्तियों की उपासना व्यक्त करते हैं, जबकि सत्य इसके विपरीत है। मैक्समूलर का वैदिक दृष्टिकोण मूलतः वेद की आत्मा से दूर ही नहीं विपरीत भी है। यह उनकी भारतीय वेदाध्ययन पद्धति की अनभिज्ञता प्रकट करता है। वेदों में न कहीं जड़ पूजा है न बहुदेवतावाद, उनमें एक ही ईश्वर को विभिन्न नामों से पुकारा गया है जो कि 'एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' ऋक १।१६४।४६ से स्पष्ट है। परन्तु जैसा कि 'मेरे वेद भाष्य का मूल उद्देश्य तो वेदों को समूल नष्ट करना है' न कि उसके वास्तविक रूप को प्रस्तुत करना तो जितना भी वेद की मौलिक भावना के विरुद्ध लिख देवें उतना ही थोड़ा है। उनका वह पत्र इस प्रकार है—मुझे आशा है, कि मैं यह कार्य सम्पूर्ण कर सकूंगा और मुझे पूर्ण विश्वास है, यद्यपि मैं उसे देखने को जीवित नहीं रहूँगा तथापि मेरा यह संस्करण और वेद भाष्य औद्यान्त बहुत हद तक भारत के भाग्य पर और उस देश की लाखों आत्माओं पर प्रभाव डालेगा वेद उनके धर्म का मूल है और मुझे विश्वास है कि इनको यह दिखाना ही कि वह मूल क्या है उस धर्म को नष्ट करने का एक मात्र उपाय है जो गत ३ हजार वर्षों से उससे (वेद से) उत्पन्न है।

मैक्समूलर वेद की मूल आत्मा को नष्ट करके ही शान्त नहीं हो जाना चाहता है वरन् आगे भी वह अपने उद्देश्य को १६ सितम्बर १८२८ को ड्यूक आफ आरगायल तत्कालीन मुख्य सचिव भारत सरकार को लिखे पत्र में इस प्रकार स्पष्ट करता है—

'भारत के प्राचीन धर्म का पतन हो गया है, यदि अब भी ईसाई धर्म प्रचलित नहीं होता है तो इसमें किस का दोष होगा।

वे अपने एक पत्र में बतलाते हैं कि भारतीय धर्म ग्रंथ एवं वेदादि शास्त्रों को किस प्रकार पढ़ना चाहिये और इस तरह से पढ़ने पर ही भारत में तुम्हारा भविष्य सरल हो जायेगा।

२० जनवरी १८८२ को श्री वाईरेन्जी मालाबारी को लिखा उनका वह पत्र इस प्रकार है—

'मैं कम से कम उन थोड़े से लोगों को बताना चाहता हूँ जिन तक मैं अपने विचार अंग्रेजी द्वारा पहुँचा सकता हूँ कि उस प्राचीन धर्म का ऐतिहासिक महत्त्व क्या है? जैसा कि समझा जाता है न केवल योरोपीय या इसाईयत की दृष्टि से ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मैं आपको दो आपत्तियों से चेतावनी देना चाहता हूँ, प्रथम तो भारतीय राष्ट्र धर्म की अवहेलना न्यून मूल्यांकन करना जो प्रायः तुम्हारे अर्ध-यूरोपीय नवयुवकों

द्वारा किया जाता है और दूसरे वेदों का अधिक मूल्यांकन या ऐसा अनुवाद करना जो कभी नहीं किया गया ऐसा दुःखद स्रोत वेदों पर दयानन्द सरस्वती के भाष्य में प्रकट होता है। वेदों को प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथ मानो जिसमें एक प्राचीन और सरल प्रकृति के मनुष्यों के विचारों का चित्रण है तब तुम इसकी प्रशंसा कर सकोगे और इसमें से उपनिषदों की शिक्षाओं को इस आधुनिक युग में भी ग्रहण कर सकोगे लेकिन तुम वेदों में खोज करो वाष्प इंजन, बिजली, योरोपीय दर्शन और नैतिकता की। वेदों को उसके सत्य रूप से अलग कर दो और उसके वास्तविक रूपों को नष्ट कर दो। और तुम प्राचीन और अर्वाचीन के ऐतिहासिक क्रम को जो इन्हें बाँधे हुए हैं छिन्न भिन्न कर दो, अतीत एक सत्य है ऐसा मानो। उसका अध्ययन करो तब तुम्हें भविष्य में अपना मार्ग ठीक करने में कम कठिनता होगी।

यह है वास्तविक उद्देश्य, जिसके लिये उसने भारतीय धर्म ग्रंथों पर इतना परिश्रम किया और अन्त में मैं आपको उस लक्ष्य की ओर ले जाना चाहता हूँ। जहाँ वह किस प्रकार भारतीय नवयुवकों को स्वधर्म में दीक्षित होने के लिये प्रोत्साहित करता है। १८९९ में ब्रह्म समाजी एन. के. मजूमदार को लिखे पत्र में यह भावनाएँ स्पष्ट झलकती हैं, वह लिखता है कि "तुम जानते हो कि मैंने तुम्हारे भारत के प्रिय धर्म को शुद्ध करने के लिये प्रयत्न एवं उसके द्वारा उसे अन्य धर्मों विशेषकर ईसाईयत की पवित्रता और पूर्णता के समीप लाने के कार्य का अनेकों वर्षों से अध्ययन किया है। सबसे पहले तुम्हें यह निश्चय करन होगा कि तुम अपने प्राचीन धर्म का कितना भाग त्यागने को तैयार हो यदि उसका समस्त नहीं जो कि पुराना कहा जाता है। तुमने इसमें से काफी त्याग दिया है, जैसे बहुदेवतावाद, मूर्ति पूजा, और धूम धाम से की गई बलि पूजा। तत्पश्चात् न्यू टेस्टामेन्ट उठाओ और स्वयं पढ़ो और निश्चय करो कि उसमें लिखे ईसाई के शब्द तुम्हें संतुष्ट करते है, अथवा नहीं, ईसाई के श्रद्धायुक्त वचनों में अन्तर्निहित उपदेश तुम तक वैसे ही आवेंगे। जैसे कि वे हम तक आते हैं। हमें उन उन उपदेशों का अपना अर्थ करने का अधिकार नहीं हैं विशेष कर यदि हम इनका स्वयं भिन्न अर्थ करें। यदि तुम इसकी शिक्षाओं को यथावत् स्वीकार करो तो तुम भी ईसाई हो या हो सकते हो यदि तुम मुझे अपनी मुख्य परेशानियाँ बताओ। जो तुम्हें स्पष्ट रूप से ईसाई बनने में बाधा डालती हैं, और जब मैं मिलूंगा तब उसे स्पष्ट करने की पूरी कोशिश करूँगा कि किस प्रकार मैंने और मेरे साथियों ने उनका मुकाबिला किया है। मेरी दृष्टि मे भारत का मुख्य भाग ईसाई बन चुका है। तुम्हें ईसाई बनने में समझाने बुझान की जरूरत नहीं है। तब तुम स्वयं अपने धर्म परिवर्तन के बारे में विचार करो। तुम से पूर्वगामियों ने पुल का निर्माण कर दिया है। निर्भयता पूर्वक आगे बढ़ो। यह तुम्हारे कारण टूटेगा नहीं, और उस पर तुम्हारे स्वागत के लिये अनेकों मित्र हैं, जिनमें तुम्हारे पुराने मित्र और साथी फ्रेडरिक मैक्समूलर से ज्यादा कोई प्रसन्न नहीं होगा।

'विश्व के प्रमुख धर्म ग्रन्थों में वेद का क्या स्थान है? इसका उत्तर वे अपने पुत्र को इस प्रकार देते हैं—

श्रेष्ठता की दृष्टि से ये धर्मग्रन्थ क्रमशः इस प्रकार हैं—

ओल्ड और न्यू टेस्टामेन्ट, कुरान, बौद्धों की त्रिपिटका, कन्फ्यूशस का धर्म ग्रन्थ, वेद और जिन्दावस्ता। तथाकथित वेद-प्रेमी प्रो० मैक्समूलर का यह है तुलनात्मक मूल्यांकन।

फ्रेडरिक मैक्समूलर के भारतीय धर्म ग्रंथों के भाष्य एवं साहित्य सृजन में विशेष रुचि लेने के उद्देश्य का प्रमाणिक उत्तर इन व्यक्तिगत पत्रों से अधिक और

क्या हो सकता है। वे आजीवन एक छद्मवेशी की तरह वैदिक वाङ्मय विरोधी साहित्य सृजन करते रहे और जिन भावनाओं को स्पष्ट रूप से अपने भाषणों या ग्रंथों में व्यक्त न कर सके, उसे उन्होंने अपने पारिवारिक सदस्यों एवं मित्रों को लिख कर किया। वे ५० वर्ष तक लगातार लार्ड मैकाले के भारत विरोधी साहित्य सृजन की योजनानुसार भारतीय जनता को वेदादि शास्त्रों के प्रति अश्रद्धा पैदा करते रहे और पाश्चात्य जगत में इनको हेय एवं निम्न कोटि का सिद्ध करने का प्रयत्न करते रहे। हालांकि अब उनकी वेद सम्बन्धी लगभग सभी कल्पनाएँ मिथ्या सिद्ध हो चुकी हैं और भारतीय धीरे धीरे मैक्समूलर के वैदिक वाड्मय अध्ययन के उद्देश्य को समझते जा रहे हैं। फिर भी उनके बोये बीज आज भी कभी कभी अंकुरित हो उठते हैं।

(समस्त पत्र मैक्समूलर की जीवनी और पत्रों से लिये गये हैं।)

धन्य है वह जीवन !

स्वामी श्रद्धानन्द;
वे लक्ष्य पर पहुँचे !
उन्होंने सब कुछ पाया !
वह अपना काम इतिहास में बहुत गहरा अंकित कर गये !
उन्हें मेरी श्रद्धांजलि !
प्रत्येक जीवन का कोई चिह्न होता है।
उनके जीवन का चिह्न था 'सेवा' !
उनकी स्मृति नये जीवन को जगा देवे
और राष्ट्र के युवकों में नई रूह फूंक देवे।
दीन दलितों को इस सेवा के लिए,
जो धर्म और आजादी दोनों का दिल है,
हम से अलग होकर भी वे मरे नहीं।
वे तो अब भी बोल रहे हैं।
और उन सबको जिन्हें मैं सुना सकता हूँ,
उस शहीद का वह संदेश सुनना चाहता हूँ।
जो इस क्षण मुझे याद आ रहा है।
यह वह संदेश है जिसमें प्राचीन नवीन का अभिनन्दन करता हूं।
"धन्य है—वह जीवन जो वह्नि में प्रज्ज्वलित है।

—टी० एल० वासवानी

बन्धु मिलन का एक दृश्य

ब्र० सत्यानन्द आर्य, शास्त्री

शमी के वृक्षों से व्याप्त जंगल। ऊबड़-खाबड़ जमीन। संध्या का समय सारा वातावरण शान्त था। भगवान् भुवन-भास्कर रश्मिजाल को समेटकर अबाध-गति से अस्ताचल की ओर जा रहे थे।

उस वन में सहसा सरसराहट की आवाज हुई। कुछ क्षण पश्चात् एक घुड़सवार जिसके घावों से रक्त रिस-रिसकर टपक रहा था, जो कि घोड़े की पस-लियों से फिसलता हुआ नीचे टपक रहा था। इस प्रकार का वह युवक एक ओर से दूसरी ओर शायद अपने निवास की ओर ही जा रहा हो क्योंकि वह घोड़े को एक ही चाल से ले जा रहा था। साथ ही वह घोड़ा जो क्षत-विक्षत था जिसके अंग-प्रत्यंग से रिसी खून की प्रत्येक बूंद धरती में पड़कर एकाकार हो रही थी, सवार को गन्तव्य स्थान की ओर ले जा रहा था।

वह घुड़सवार जिसका अंग-प्रत्यंग क्षत होते हुए भी प्रत्येक अग से वीरता की झलक स्पष्ट दिखाई दे रही थी, तथा जिसका मुखमण्डल ओज व कान्ति से परि-पूर्ण था। जिसकी कमर में तलवार लटक रही थी व हाथ में भाला, जिसकी ओर देखकर वह प्रसन्नता अनुभव कर रहा था। न जाने वह किसी राजा का सेनापति था अथवा राजा। भाले को देखकर वह प्रसन्नता अनुभव कर रहा था। यों प्रतीत हो रहा था कि इसके भाले ने कहीं युद्ध में कमाल करके दिखलाया हो।

× × ×

एक युवक जो वृक्ष की छाया में खड़ा था, जिसके पार्श्व में एक श्वेत अश्व खड़ा था। एकाएक उस युवक के मुख से निकल पड़ा—हे दयानिधान! मुझपर दया करो। हे करुणानिधान!! मुझपर दया करो। हे करुणासिन्धो!!! मुझ बालक पर दया करो—दया करो। मुझसे बड़ा अपराध हुआ है, बहुत बड़ी गलती की है। हे दयासिन्धो! मुझ अपराधी के अपराधों को क्षमा करो। मैंने देश ही नहीं, अपितु भाई के प्रति, धर्म के प्रति, जनता के प्रति और आपके प्रति अन्याय किया है। हे दयालो! मुझ अपराधी के अपराध क्षमा करो—क्षमा करो।

ओह! सूअर पर निशाना साधने के लिए भाई से झूठ बोला, उस पर वार किया। परिणामस्वरूप कुल पुरोहित ने अपना अनुपम बलिदान दिया। भाई ने मुझे निर्वासन का दंड देकर बाहर धकेल दिया, जिस पर मैंने दुष्ट म्लेच्छों का आश्रय लिया। हे भगवन्! मेरे अपराध क्षमा करो।

मैंने अपने-अपने भाई के विरुद्ध शस्त्र का प्रयोग नहीं किया। परन्तु क्या इसे ही भ्रातृभक्ति एवं देशभक्ति कहते हैं ? क्या यही मेरी वीरता है ? धिक्कार है ऐसी मेरी वीरता पर।

हे ईश्वर ! मुझे आत्मशक्ति दो—आत्मबल दो। मुझे दो हंसवत् कर्त्तव्या-कर्तव्य का निर्णय करने वाली बुद्धि ! हे रुद्र ! मुझे रुद्रता प्रदान करो जिससे मैं अरिदल को अपनी तलवार से मजा चखाऊँ। हे दयानिधान ! मुझ अज्ञानी बालक पर दया कर--दया कर।

× × ×

अचानक उसकी पैनी दृष्टि जंगल के वृक्षों के बीच में से निकली हुई एक पगडण्डी पर पड़ी जिसपर से दो मुगल सैनिक शस्त्रों से लैस होकर अपने घोड़े को चुपके-चुपके भगाये लिये जा रहे थे। उसकी दृष्टि ने उस प्रसंग को समझा व मन ही मनमें बुदबुदाया कि दुष्टो ! तुम्हें लज्जा नहीं आती। युद्धविराम होने के पश्चात् भी तुम उसकी जान लेना चाहते हो। तुम्हारा युद्ध विराम के प्रतिकूल ऐसा आचरण ? अच्छा लो अभी तुम्हें यमलोक पहुँचाये देता हूँ। ऐसा कहकर घोड़े पर सवार होकर घोड़े को मुगलों के पीछे छोड़ दिया।

× × ×

"हो नीला घोड़ा सवार" श्वेत अश्वारूढ़ युवक ने आवाज लगाई, जिससे उस जंगल में नीरवता छा गई। कुछ ही क्षण पश्चात् एक शानदार वृक्ष पर एक उल्लू बोला जिसकी आवाज से सारा जंगल गूंज उठा। उस घुड़सवार ने जिसका घोड़ा नीला था, एकाएक घोड़े को रोककर पीछे की ओर देखा कि एक घुड़सवार दो मुगलों को मारकर उसी की ओर घोड़े को द्रुतगति से दौड़ाते हुए आ रहा है। एक बार तो वह युद्ध के लिए तैयार हो जाता है, किन्तु घुड़सवार को समीप आते देख उसके दिल ने सहसा पलटा खाया। प्रस्तरवत् खड़ा हुआ वह उस युवक को देखने लगा। श्वेत अश्वारूढ़ युवक नीचे उतरा। दोनों की आँखें चार हुईं तो उनमें से एक बोला—जिसकी आयु दूसरे से अधिक प्रतीत होती थी, 'आओ शक्तिसिंह ! आज तुम भी अपनी मनःकामना पूरी कर लो, और लो बदला उस कठोर दण्ड का।' मेरा सौभाग्य है कि यवनों द्वारा न मारा जाकर अपने ही अनुज से इस शरीर का विनाश हो रहा है। अहा ! कैसी शानदार मौत है मेरी।' दूसरा युवक जो पसीने से तर-बतर हो रहा था, जिसकी तलवार हाथ से छूटकर दूर जा पड़ी थी, पैरों पर गिरकर अर्थात् अभिवादन कर सिसकियाँ भरता हुआ बोला—भैया !' मुझे क्षमा कर दो, मुझ से बहुत बड़ा अपराध हुआ, लो अपनी पैनी तलवार और कर दो इस अपवित्र शरीर के दो टूक। हे सर्वव्यापिन् ! मैंने अपने भाई के साथ, देश के साथ, धर्म के साथ एवं जनता के साथ द्रोह किया है। हे भगवन् ! मुझे क्षमा कर दो—क्षमा कर दो। अपने अनुज की इस अवस्था को देखकर उसके नयनों से अश्रुधारा बह चली। उसने उसे गले से लगाया। दोनों एक दूसरे की छाती से लिपट गये।

शक्तिसिंह की श्रद्धा-भक्ति को देखकर महाराणा को भरत की व महाराणा के स्नेहाश्रुओं को देखकर शक्तिसिंह को राम की याद आने लगी।

जननेताओं का महर्षि के प्रति श्रद्धाज्ञापन
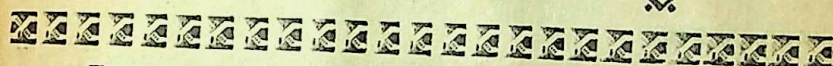
समय समय पर आर्य समाज के प्रवत्तक और वैदिक धर्म के उद्धारक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती को विभिन्न प्रदेशों के नेताओं, प्रशासकों एवं विद्वानों तथा मनीषियों ने जो श्रद्धा सुमन समर्पित किए हैं, उन में से कुछ प्रस्तुत हैं:—

समाज सदा ऋणी रहेगा

"महर्षि दयानन्द एक महापुरुष थे जो सामाजिक विषमता, रूढ़िवाद, ऊँच नीच और छुआछूत जैसे कलंक का उन्मूलन करने के लिए आजीवन संघर्षरत रहे। समाज ऐसे महापुरुषों के लिए सदा ऋणी रहेगा। ऐसे महापुरुषों द्वारा बताए मार्ग पर चलकर और उनके आदर्शों, उपदेशों और संदेशों को जीवन में अवतरित कर ही समाज उन्नत हो सकता है।"

—जगजीवन राम
केन्द्रीय कृषि मंत्री

महर्षि का जीवन : संकट में मार्गदर्शन

"स्वामी दयानंद जी ने ज्ञान, समाज सुधार और नव-जागरण के जो दीप जलाये उनके कारण हर दीपावली पर देश उन्हें श्रद्धा के साथ याद करता है। महर्षि का जीवन हर अंधेरे और संकट में मार्गदर्शन कर सकता है। वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के जो आदर्श दयानंद जी ने प्रतिपादित किए उनमें राष्ट्रभाषा, राष्ट्रीय एकता, मानवीय समानता आदि वर्तमान सभी समस्याओं के हल हमें सहज ही मिल सकते हैं।"

—राम सुभग सिंह,
भूतपूर्व केन्द्रीय संचार मंत्री

अलौकिक प्रतिभा के धनी

"महर्षि दयानन्द अलौकिक शक्ति, विद्वता और प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में सुधार करने का जो महान् कार्य किया है, वह अविस्मरणीय है।"

—त्रिगुण सेन
भूतपूर्व केन्द्रीय शिक्षा मंत्री

सांस्कृतिक जागरण में अतुलनीय स्थान

"हमारे सांस्कृतिक नव जागरण में महर्षि दयानंद का एक अतुलनीय स्थान है। समाज में हुए अनेक सुधारों और परिवर्तनों का श्रेय युगों तक उन्हें दिया जाता रहेगा।"

—प्रो० शेर सिंह, संसत्सदस्य

देश सदा कृतज्ञ रहेगा

"जिसने अमावस्या के घोर अंधकार को अपने प्राकट्य से छिन्न-भिन्न करके एक बार पूर्णिमा के दर्शन करा दिए, उस दिव्य शक्ति के बारे में मेरा मत क्या भिन्न होगा ? इस देश की प्रबुद्ध जनता जानती है कि आज समाज में जो कुछ अच्छा दिखाई देता है, उसके प्राणवान् उत्स स्वामी दयानन्द सरस्वती हैं। समाज-सुधार, स्त्री-शिक्षा, अस्पृश्यता-उन्मूलन आदि का 'श्री गणेश' स्वामी जी ने ही किया था। महर्षि के प्रति यह देश सदा कृतज्ञ रहेगा।"

—**आचार्य किशोरीदास वाजपेयी**

नवजीवन के प्रदाता

"सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध में भारत परास्त हुआ। फलस्वरूप भारत में वातावरण अत्यन्त निराशामय हो गया। उस समय जिस व्यक्ति ने देश में नवजीवन और आशा का संचार किया वह महापुरुष स्वामी दयानन्द ही थे। उन्होंने आर्य समाज का स्थापना करके देश को जगाया। सारे देश में हिन्दू जागृति हुई अतः स्वामी दयानन्द को दी जाने वाली महापुरुष संज्ञा सर्वथा सार्थक है। भारत उनकी सेवाएँ कदापि न भुला पाएगा।"

—**स्व० डा० ना० भा० खरे**
भूतपूर्व अध्यक्ष
अ० भा० हिन्दू महासभा

राष्ट्र चिर ऋणी

"स्वामी दयानन्द भारतीय सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक थे। उन्होंने सुप्त राष्ट्र में नवचेतना और नवजागरण का सचार किया। ऐसे महापुरुष का राष्ट्र चिर ऋणी है। हम उनके जीवन और चरित्र से प्रेरणा लें यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।"

—**स्व० सेठ गोविन्ददास**

महान् क्रान्तिकारी

"महर्षि दयानन्द सरस्वती हमारे देश के उन महापुरुषों में थे, जिन्होंने सत्य के प्रकाश के लिए महान् धार्मिक और सामाजिक क्रान्ति की। महर्षि के लिए शत-शत श्रद्धांजलियाँ।

—**स्व० क० मा० मुंशी**

भारतीय पक्षी भी बेचे जाने लगे

पैसे के लिए सरकार पागल

अब भारतीय पक्षी भी विदेशी मुद्रा के लिए बेचे जाने लगे हैं। १९७२-७३ में पक्षियों के निर्यात से भारत को लगभग ८० लाख रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई।

ये पक्षी आस्ट्रेलिया, बेलजियम, डेनमार्क, फ्रांस, हांगकांग, इटली, ब्रिटेन, अमरीका और पश्चिमी जर्मनी जैसे २२ देशों को निर्यात किये गये। इन पक्षियों में मैना, तोता, मोर, कबूतर आदि पालतू पक्षी भी शामिल हैं।

भारत ने बन्दरों के निर्यात से भी इसी अवधि में ३६ लाख रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त की। इसके अतिरिक्त बकरियां, भेड़, हाथी, कछुए आदि भी निर्यात किये, जिनसे १४ लाख रुपयों की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई।

गणतंत्र दिवस : उभरते प्रश्न

—वचनेश

पचीसवाँ गणतन्त्र दिवस आ गया है। देखते ही देखते एक पीढ़ी का समय व्यतीत हो चला। अनन्तकाल से अजस्र रूप में प्रवाहित राष्ट्र जीवन प्रवाह में यों तो एक पीढ़ी का स्थान सागर में एक विन्दुमात्र से अधिक नहीं कहा जा सकता, किन्तु एक बात और भी है, जिसे दृष्टि से ओझल करना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव भी है। वह यह है कि इसी पीढ़ी को इतिहास के एक ऐसे महत्त्वपूर्ण संधि-स्थल पर खड़े होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था कि जब राष्ट्र की अगणित पीढ़ियों ने अपने १३०० वर्ष से भी कुछ अधिक समय के सुदीर्घ कालखण्ड के सतत संघर्ष एवं बलिदान शृंखला के परिणामस्वरूप अर्जित स्वतन्त्रता के साथ ही साथ अपने उन स्वप्नों की धरोहर भी इस पीढ़ी को सौंपी थी जो कभी प्रणवीर प्रताप ने अपने नेत्रों में सहेजा था तो कभी छत्रपति शिवाजी ने। कभी लोकमान्य तिलक और युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने उसे देखा था तो कभी असिधारा व्रत का पालन करने वाले स्वातन्त्र्यवीर सावरकर, अमरहुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द, शहीद भगतसिंह, बिस्मिल एवं देवतास्वरूप भाई परमानन्द ने उसे अपने नेत्रों में संजोया था।

इसी पीढ़ी को मिला था एक महान् दायित्व और वह था परतन्त्रता से उत्पन्न विकृतियों और दुर्बलताओं को समाप्त कर एक महान् शक्तिशाली स्वावलम्बी चारित्र्य सम्पन्न देदीप्यमान भारत के पुनर्निर्माण करने का। किन्तु स्वतन्त्रता के २६ वर्षों की हमारी उपलब्धि क्या है? हमने 'रामराज्य' के आदर्श को तिलांजलि देकर समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता आदि जिन पाश्चात्य नारों को स्वजीवन का लक्ष्य घोषित किया, स्वतन्त्र हिन्दुस्तान का मूल आधार निरूपित किया उनकी दिशा में भी हम कितने आगे बढ़ पाए हैं? स्वसंस्कृति, राष्ट्रवाद और परम्पराओं की पूर्ण उपेक्षा कर हमने चुनाव की राजनीति को माध्यम बनाकर सामाजिक तथा आर्थिक विषमताओं से विमुक्त एक समरस समाजवादी समाज को खड़ा करने का दम्भ भी भरा था, संविधान में लम्बी-चौड़ी घोषणाएँ भी की थीं किन्तु हमारे समाज की क्या दशा है, क्या गति है? आध्यात्मिकता के जिस पावन सन्देश को विश्व के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए भारत ने शताब्दियों तक पराधीनता की यन्त्रणाओं से जूझकर भी स्वयं को जीवित रखा था, उस अध्यात्म को रद्दी की टोकरी में फेंककर हमने 'धर्म' को छोड़कर 'अर्थ' और राजनीति की ही उपासना को सर्वस्व माना। परन्तु इतने वर्षों की इस ऐकान्तिक उपासना का परिणाम हमें क्या प्राप्त हुआ?

परिणाम क्या ?

इसका उत्तर यहा प्राप्त होता है कि आर्थिक वैषम्य में वृद्धि हुई है तो जीवनोपयोगी आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्य गगनविहारी हो उठे हैं। समाजवाद की सरगम ही नहीं अपितु नगाड़े की आवाज ज्यों-ज्यों तीव्र होती गई पूंजी और उत्पादन के स्रोतों पर या तो सरकार का एकाधिकार बढ़ा अथवा मुट्ठीभर लोगों का। जहां तक जनसाधारण का प्रश्न है, उसे तो मिली हैं नए-नए कानूनों के विधानमंडल में पारित होने की घोषणाएँ। किन्तु कथनी और करनी के इस अंतर ने देश को दिया क्या है ? बेरोजगारों की लम्बी कतारें और 'भूमि हथियाओ' सरीखे अप्रजातांत्रिक आन्दोलन। आर्थिक क्षेत्र में हमारी उपलब्धि क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि हमारी दो ही उपलब्धियां रही हैं। एक है 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' के चार्वाकी आदर्श को चरितार्थ करते हुए अरबों का विदेशी ऋण, जो इस आर्य भूमि में जन्म लेने वाले प्रत्येक शिशु के गले में पट्टे की तरह लटक जाता है एवं भांति-भांति के कमरतोड़ करों का भार। हां, यदि कर और ऋण किसी देश की समृद्धि का प्रतीक कहे जाएँ तो फिर हम संसार भर में बाजी मार कर सर्वाधिक समृद्ध और रईस बन चुके हैं।

वोटलोलुप राजनीति

तथाकथित धर्मनिरपेक्षता ने जहां हमारे मन में अपना सब-कुछ हेय और अन्यों का सब-कुछ वरेण्य की प्रवृत्ति पनपायी वहाँ वोटलोलुप राजनीति के इस नारे के प्रवाह में देश की राष्ट्रीयता के प्रमुखतम आधार हिन्दू (आर्य) समाज की निन्दा और भर्त्सना ही युगगति बन गई है। कोई सर्वोदय का प्रेरक यज्ञोपवीत को तोड़ फेंकने के उपदेश दे रहा है तो स्वयं को 'राष्ट्रीयता' का सजीव प्रतीक बताने वाले कई 'जन' पृथकतावादी विदेशनिष्ठ सम्प्रदायवाद का पोषण करते रहे हैं और उसी के अनिवार्य फल भी आज राष्ट्र के समक्ष प्रकट हो रहे हैं। सारे भारत में पुनः मुस्लिम लीग का दैत्य खड़ा हो गया है तो ईसाई वर्ग में भी ऐसे कई तत्त्व उभर उठे हैं कि जो जनसंख्या के आधार पर विभिन्न निकायों में प्रतिनिधित्व की मांग कर रहे हैं।

थोथे नारे

जिस लोकतन्त्र की हम नित्य आरती उतारते हैं, उसी के स्तम्भ एक-एक कर क्षीण होते जा रहे हैं। संविधान की पवित्रता की दुहाई भी देश में धर्म नहीं, अधर्म-सा बन गया है। जो संविधान को ध्वस्त करने की घोषणाएँ करने में भी नहीं सकुचाते उन्हें सत्ता का संरक्षण प्राप्त होता है। थोथे नारों ने देश के वायुमण्डल को ग्रस लिया है। चतुर्दिक् हिंसा में हो रही वृद्धि अराजकता की स्थिति को बढ़ावा दे रही है। राजनैतिक दलों में टूट और विघटन की प्रक्रिया वृद्धि पर है। लगता है इस पर आवरण डालने के लिए ही कभी लोकतांत्रिक शक्तियों की एकता का उद्घोष गूंजता है तो कभी धर्म निरपेक्षता का। सैद्धान्तिक निष्ठा के स्थान पर राजनैतिक से लेकर सामाजिक संगठनों तक में अवसरवाद को प्रबलता प्राप्त हो रही है। इसी राजनीति की बलिहारी है कि आर्यत्व के प्रति निष्ठा की अभिव्यक्ति संकीर्णता की प्रतीक कही जाती है तो द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम सरीखी संस्थाएँ प्रगतिशील और धर्मनिरपेक्ष होने के प्रमाणपत्र पा रही हैं, जो राम के पुतलों के दहन की घोषणाएँ करती हैं, तो रावण जिनके लिए आदर और पूजा का पात्र बन रहा है।

वस्तुतः आज हम ऐसे बिन्दु पर जा पहुँचे हैं कि हमें नए सिरे से विचार की प्रक्रिया को अपनाना होगा। यदि हमने तनिक-सी भी चूक की तो हमारे भविष्य का और भी अधिक अन्धकार और कालिमापूर्ण होना सुनिश्चित है। नए चिन्तन की मुख्य धुरी हमें यह बनानी होगी कि क्या राजनीति के माध्यम से स्वदेश का वर्तमान स्थिति से उद्धार सम्भव है? क्या यह अनैतिक राजनीति अपने ही द्वारा पनपाई जा रही अराजकता पर नियन्त्रण प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर सकती है? यदि नहीं, तो सत्ता की राजनीति से अलिप्त किसी ऐसी सामाजिक शक्ति पर आशाएँ केन्द्रित करनी होंगी जो इस आर्यावर्त और स्वपरम्परा तथा संस्कृति के प्रति अव्यभिचारी निष्ठा लेकर आसेतु हिमाचल एकरस, राष्ट्रभक्त समाज का निर्माण करने की साधना में तल्लीन हो सके। जो मजहबी संकीर्णता के दायरे से देश को, इसकी जनता को निकालकर वास्तविक मानवता की दिशा में प्रवृत्त कर सके। एक पीढ़ी के अनुभवों का एक ही निष्कर्ष है कि इस विघटन, बिखराव तथा पतन की प्रक्रिया को रोकने की शक्ति और सामर्थ्य इस राजनीति में नहीं अपितु भारत की संस्कृति की अजस्र धारा में ही है।

युग की मांग यही है कि जितना शीघ्र हम स्वयं को राजनीति के नागपाश से मुक्त कर संस्कृति माता की गोद में डाल दें उतना शीघ्र ही बलिदानी पूर्वजों द्वारा वर्तमान पीढ़ी को अपने सुस्वप्नों की जो थाती सौंपी गई है, उसकी पूर्ति का मार्ग प्रशस्त होगा। संस्कृति की इस मन्दाकिनी को प्रवाहित रखने का आधार है वैदिक ज्ञान और आध्यात्मिकता की गंगा में युवा पीढ़ी को स्नान कराने की दिशा में प्रवृत्त करना। यही है युग की माँग, यही है युग की पुकार।

कुछ वचन : चिंतन के क्षण

* हर देश में यह कैसी राजनीति फैली है, जिस में जनता नेताओं का मजाक उड़ाती है और नेता जनता का।

—ग्रोउचो मार्क्स

* सदैव सही काम ही करो। इससे कइयों को सुख मिलेगा। जिन्हें सुख नहीं मिलेगा, वे चकित होंगे।

—मार्क ट्वेन

* एक ऊंट दूसरे ऊंट के कूब का उपहास कभी नहीं उड़ाता।

—गिनी की कहावत

* जो आत्मा-रूपी सही धन को नहीं पहचानता, उसकी रक्षा नहीं करता, वह और किस चीज की रक्षा कर सकता है।

—गांधीजी

* प्रेमविश्वास से जन्म लेता है, आशा में जीता है और उसकी परिणति दान में है।

— इबिड

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी रचनात्मक

रूप से मनाने के लिए

अपने क्षेत्र में अधिक से अधिक

प्रचार-पोस्टर लगवाइए

अभी चार पोस्टर तैयार हैं। २०×३० इंच साइज में

१. सत्यार्थप्रकाश के सम्बन्ध — ३५) सैकड़ा, पत्ती लगा ५०) सै०
२. आर्यसमाज के १० नियमों का तिरंगा— ,, ,, ५०) सै०
३. स्वामीजी के चित्र वाला (चार रंगों में) ,, ,, ५०) सै०
४. गायत्री मंत्र अर्थ सहित ,, सादा ३५) सै०
(३ रंगों में) पत्ती लगा आर्ट पेपर पर ५०) सै० १५×२० साइज में
५. स्वामीजी व १० नेताओं का चित्र — पत्ती लगा ५०) सैकड़ा, बढ़िया १००) सैकड़ा
६. स्वामीजी का असली चित्र ,, २५) ,,
७. स्वामीजी के दो चित्र छोटे ,, १००) ,,
८. १९७५ का कलैण्डर ,, ६५) ,,
९. स्वामीजी का बड़ा चित्र ,, १००) ,,

पोस्टर बड़े साइज में अत्यन्त बढ़िया कागज पर छापे गये हैं। व्यय बहुत पड़ता है पर प्रचार के लिए हम लागत से भी कम मूल्य पर दे रहे हैं। आर्यसमाजों का नाम लिखने के लिए भी स्थान छोड़ा गया है।

१. कृपया आदेश के साथ चौथाई धन भेजें
२. अपने रेलवे स्टेशन का नाम लिखें

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

एक समारोह : एक संस्मरण

निराशा में आशा :

अनेकता में एकता

६ दिसम्बर का सायंकाल। भगवान् भुवन भास्कर अस्ताचल गामी हो रहे थे। ५॥ बजे का समय। नई दिल्ली के प्रमुख मार्ग—मन्दिर मार्ग—स्थित आर्यसमाज मन्दिर में वेद मन्त्रों की पावन ध्वनि गूंज उठी। हवन और मन्त्रों के उच्चारण से वायुमण्डल एक स्वर्गिक आनन्द से अनुपूरित हो उठा।

सभागार में बैठे सैकड़ों भद्रजन आबाल वृद्ध नर-नारी समवेत स्वरों में मन्त्रोच्चार में तल्लीन थे। उनमें वयोवृद्ध संन्यासी थे तो सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में प्रमुख स्थान रखने वाले प्रमुख नेता और कार्यकर्ता भी, श्रमिक थे तो श्रीमन्त भी। रायसाहब थे तो राय आमा के निर्माता सामान्यजन भी।

यह क्रम चल ही रहा था कि तभी भारत स्थित नेपाली राजदूत महामहिम श्री कृष्ण बॉम मल्ल पधारे। इस समारोह के संयोजक पं० भारतेन्द्रनाथ ने उनकी द्वार पर आगवानी की। वे द्वार से सभागार में प्रविष्ट हुए और मच के समीप फर्श पर ही प्रमुख नागरिकों की अग्रिम पंक्ति में आसीन हो गए। आर्यजगत् के तपोधन संन्यासी महात्मा आनन्द स्वामी एवं स्वामी ओमानन्द पहले से ही वहाँ उपस्थित थे। कुछ ही क्षण बाद राजधानी के सुप्रसिद्ध पत्रकार एवं निर्भीक वक्ता तथा लेखक श्री के० नरेन्द्र का आगमन हुआ। उनके साथ ही साथ अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के अध्यक्ष प्रो० रामसिंह तथा दिल्ली प्रदेश संगठन कांग्रेस के अध्यक्ष श्री० देसराज चौधरी पधारे।

हवन अभी भी जारी था। वेदमन्त्रों की पावन अनुगूंज ध्वनि विस्तारक यन्त्र के माध्यम से आसपास के वायुमण्डल को भी अनुगुंजित कर रही थी। हवन पूर्ण हुआ। शांति पाठ भी। और तदुपरान्त पं० भारतेन्द्रनाथ ने ध्वनि विस्तारक पर घोषित किया समारोह का उद्देश्य अर्थात् दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित अथर्ववेद भाष्य का विमोचन। सर्वप्रथम रायसाहब चौधरी प्रतापसिंह ने महात्मा आनन्द स्वामी, आज के समारोह के मुख्य अतिथि नेपाल के राजदूत महामहिम श्री कृष्ण बॉम मल्ल, श्री के० नरेन्द्र, स्वामी ओमानन्द, प्रो० रामसिंह तथा श्री देसराज चौधरी आदि का पुष्पहारों से स्वागत किया।

अभी कुछ ही क्षण गुजरे थे कि केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री डा० कर्णसिंह का आगमन हुआ। कई कैमरामैनों के हाथों ने फुरती दिखाई और कुछ चित्र ले लिए। कार्यक्रम आरम्भ हो गया। सर्वप्रथम मुख्य अतिथि श्री कृष्ण बॉम मल्ल ध्वनि विस्तारक के समक्ष आए और उन्होंने कहा—

'आज का संसार विज्ञान के प्रभाव में विकसित और पल्लवित हो रहा है। वैज्ञानिक उपलब्धियों और सुविधाओं के चमत्कार के वशीभूत होकर मनुष्य ईश्वरीय

आचरण को भूल रहा है, जिसके फलस्वरूप मानव चिन्ताओं में जकड़ता जा रहा है। मनुष्य के मस्तिष्क में अन्धकार है और हृदय में तनाव। इन रोगों से पीड़ित और व्याधियों से विचलित मानव को वैदिक ज्ञान द्वारा ही बचाया जा सकता है, उद्धार किया जा सकता है। वैदिक ज्ञान द्वारा ही अंधकार, चिन्ता अथवा तनाव पर नियन्त्रण सम्भव है। जिस देश मे चारों वेदों का प्रादुर्भाव हुआ, जिस देश में ऋषियों के सहारे वैदिक धर्म का परिपालन हुआ, उसी भारत को विश्व में मनुष्य के जीवन को सार्थक और सुखमय बनाने के लिए आध्यात्मिक नेतृत्व प्रदान करना चाहिए। वेद की शिक्षा के माध्यम से भारत अवश्य ही विश्व को आध्यात्मिक नेतृत्व प्रदान कर सकता है।'

और अन्त में आपने वेदभाष्य प्रकाशन को, दयानन्द संस्थान द्वारा इस दिशा में दिया गया महत्वपूर्ण योगदान निरूपित किया।

और इस अवसर पर आशीर्वचन में महात्मा आनन्द स्वामी ने घोषणा की—

'वेद संसार का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मजहब-निरपेक्ष ग्रन्थ है। हमारी सरकार भी मजहब-निरपेक्ष है। अतएव सरकार को स्वयं भी इसका प्रचार करना चाहिए।'

तदुपरांत उस समारोह में एक अभूतपूर्व सी स्थिति उत्पन्न हो गई। वह उस समय जब अथर्ववेद भाषा भाष्य की प्रथम प्रति इस समग्र वेद प्रचार अभियान की प्रेरणा स्रोत पंडिता राकेश रानी ने डा० कर्णसिंह जी को विमोचनार्थ भेंट की। विमोचन-कर्ता भी असमंजस में थे, क्योंकि यह पुस्तक कोई साधारण पुस्तक न थी। अपितु था सृष्टि के आदिग्रन्थ वेद के एक भाग अथर्ववेद का भाषा भाष्य। डा० कर्णसिंह ने श्रद्धासहित वेदमाता को नमन किया और फिर बोले 'भला वेद का विमोचन कोई व्यक्ति क्या करेगा। वेदों ने स्वयं मानव की ही विमुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया है।'

आपने आगे कहा 'विभिन्न ग्रन्थ उत्तम हैं और उनमें जो ज्ञान उपलब्ध है वह आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करते हैं। किन्तु कल्याण वेद के पूजन अथवा उसे घर में रखने मात्र से नहीं होगा अपितु उनका मनन और तदनुसार जीवनयापन से ही होगा। आज हमारा अतीत दूर होता जा रहा है और भविष्य का निर्माण नहीं हुआ। विज्ञान बढ़ रहा है, किन्तु ज्ञान कम हो रहा है। आज की स्थिति में जिस आध्यात्मिक शक्ति की आवश्यकता है, वह शक्ति वेद से ही प्राप्त हो सकती है।'

विमोचन की औपचारिकतापूर्ण हुई और तदुपरांत स्वामी ओमानन्द, प्रो० रत्नसिंह, श्री के० नरेन्द्र, चौ० देसराज आदि ने जहाँ वेद की महत्ता का प्रतिपादन किया, वहाँ दयानन्द संस्थान के द्वारा किए जा रहे वेद प्रचार के महान् अनुष्ठान का भी यशोगान किया और अन्त में संस्थान के अध्यक्ष पं० भारतेन्द्रनाथ ने संस्थान के अब तक के कार्यों की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की और भावी योजनाओं पर भी प्रकाश डाला।

शांति पाठ से समाप्त हुआ यह समारोह। सभी उपस्थित श्रोताओं के मानस पटल पर एक छाप थी, एक भावना का उद्वेग था और था आशा की एक ज्योति का उद्भव। वह आशा यह कि आज जब मानवता उद्भ्रांत और विभ्रांत है, दुःख, दैन्य, पारस्परिक कलह और राजनीति के ऊहापोह में जनमानस डूब रहा है, अनेकता में एकता का स्वर, निराशा में आशा की किरण और अशांति में शांति के सरगम का प्रवाह करने में समर्थ है प्रभु की अमरवाणी वेद।

इस समारोह में सनातन धर्मावलम्बी सज्जन थे तो शिखा सूत्र की रक्षार्थ केशधारी परमात्मा के अनुगामी गुरु के शिष्य भी। जैन मतावलम्बी थे तो कुछ

स्वयं के नास्तिक होने के दावेदार भी। किन्तु आज वे भी एक जिज्ञासा लिए लौट रहे थे तथा उनमें से कई को चर्चा करते हुए सुना गया 'वेद को पढ़ना तो होगा ही भाई, क्योंकि आज विभिन्न वक्ताओं ने इस महान् ग्रन्थ का गरिमागान किया है, उस तक पहुँचना भी जरूरी है।

विशेष अतिथि पहले विदा हुए थे। उनके मुख पर भी आज के समारोह की ही चर्चा थी। एक संस्मरण है और वह भी अविस्मरणीय।

हुआ यह कि जब नेपाल के राजदूत इस समारोह से विदाई ले रहे थे उन्हें उनके वाहन तक पहुँचाने के लिए कुछ बन्धु गए तो उन्होंने अपने एक सुपरिचित पत्रकार से कहा 'काश ! वेद मुझे तब मिला होता कि जब मैं १५ वर्ष का था। शायद मेरी जीवनधारा कोई अलग मोड़ ही ले लेती। किन्तु फिर वे एक क्षण के लिए मौन हो गए और बोले किन्तु एक समाधान भी है कि हम न सही दयानन्द संस्थान के योगदान से हमारी सन्तान के लिए तो यह शुभ दिन आ गया है।

—बनारसीसिंह

◆ राष्ट्रीय अन्तरात्मा की एक रसमयता ◆

—महादेवी वर्मा

किसी भी देश के मानव-समूह के पास वैदिक वाङ्मय के समान प्राचीन और समृद्ध वांग्मय नहीं है। इतना ही नहीं, किसी भी भू-खण्ड का मानव गर्व के साथ यह घोषणा नहीं कर सका है—

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। —अथर्व०

भूमि माता है। मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ।

भारत राष्ट्र शब्द में भारतभूमि, उसके निवासी और उनकी संस्कृति तो अन्तर्निहित है ही, उक्त संज्ञा से वे विश्व की राष्ट्र समष्टि में अपनी स्थिति का बोध भी कराते हैं और दूसरों को अपना परिचय भी देते हैं।

इतिहास ने अनेक बार प्रमाणित किया है कि जो मानव समूह जिस सीमा तक अपनी धरती से तादात्म्य कर सका है, वह उसी सीमा तक अपनी धरती पर अपराजेय रहा है।

'हमारा हिमालय से कन्याकुमारी तक फैला हुआ देश, आकार और आत्मा दोनों दृष्टियों से महान् और सुन्दर है। उसका बाह्य सौन्दर्य विविधता की सामंजस्य-पूर्ण स्थिति है और आत्मा का सौन्दर्य विविधता में छिपी हुई एकता की अनुभूति है।

चाहे कभी न गलने वाला हिम का प्राचीर हो, चाहे कभी न जमने वाला अतुल समुद्र हो, चाहे किरणों की रेखाओं से खचित हरीतिमा हो, चाहे एकरस शून्यता ओढ़े हुए मरु हो, चाहे सांवलेभरे मेघ हों, चाहे लपटों में साँस लेता हुआ बवंडर हो, सब अपनी भिन्नता में भी एक ही देवता के विग्रह को पूर्णता देते हैं।

यदि इस भौगोलिक विविधता में व्याप्त सांस्कृतिक एकता न होती, तो यह विभिन्न नदी, पर्वत, वनों का संग्रह-मात्र रह जाता। परन्तु इस महादेश की प्रतिमा ने इसकी अन्तरात्मा को एकरसमयता में प्लावित करके इसे विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान किया है, जिससे यह आसमुद्र एक नाम की परिधि में बँध जाता है।'

◆◆◆

आत्मा को सुनें

—हरेश कुमार सिंह

कभी न कभी प्रत्येक मनुष्य के मन में एक प्रश्न उपस्थित होता है कि मैं इस पृथ्वी पर क्यों आया हूँ ? आने के बाद क्या करना है ? क्या फिर इस पृथ्वी से जाना भी है ? आरम्भ के दो प्रश्नों का उत्तर ज्ञात हो या न हो किन्तु अन्तिम प्रश्न का उत्तर हर किसी को ज्ञात है—अर्थात् इस पृथ्वी से मुझे अवश्य जाना है। कहाँ जाना है यह तो नहीं पता किन्तु हम सभी देखते हैं कि हमसे जो पहले आये थे वे चले जा रहे हैं। और इसी आधार पर अनुमान लगा लेते हैं कि हमें भी अवश्य जाना है। इसका मतलब यह हुआ कि हम जैसे सभी प्राणियों को एक समय आना है और कुछ समय यात्री की तरह समय बिताकर यहाँ से एक दिन चल देना है। ठीक उसी तरह चल देना है जैसे देशाटन करने वाले, भ्रमण करने वाले यात्री अपने घर से चलते हैं और यात्रा पूरी कर निश्चित समय पर अपने घर वापस चले जाते हैं।

हम सब पृथ्वीनिवासी मात्र एक यात्री हैं, मुसाफिर हैं। इसलिए हमारा ध्यान अपने छोड़े हुए घर की ओर होना चाहिए। उसी तरह हमें सावधान रहने की आवश्यकता है जिस तरह रेल के मुसाफिर अपने निश्चित स्थान पर पहुँचने के लिए सावधान रहते हैं। हम सभी अच्छी तरह जानते हैं कि अगर यात्रा चार घण्टे की है और रेल गाड़ी तीव्रगामी है तो सोना नहीं चाहिए। अन्यथा सोये रह गए तो स्टेशन छूट जायगा और हम भटक जायेंगे। भटक कर चीखेंगे, रोयेंगे, बिलखेंगे। किन्तु यह सब जानते हुए भी हम सभी सोने का उपक्रम कर रहे हैं।

आज हम सो रहे हैं। बेखबर हैं अपने आप से। अपने आप से अर्थात् अपनी आत्मा से। आत्मा के विषय में, अपने आप के विषय में नहीं सोचते हैं। केवल दुनिया की नश्वर चीजों में उलझे रहते हैं। भौतिक, नाशवान् वस्तुओं के जुटाने में लगे रहते हैं। पूरी जिन्दगी ऐसी ही वस्तुओं का गट्ठर बनाने में लगे रहते हैं जिनका मेरे लिए कोई उपयोग नहीं है। नाशवान् हैं, भारी हैं, मेरे साथ नहीं जा सकती हैं। किन्तु फिर भी जुटाने में लगे रहते हैं। जरा सोचिए, उस यात्री की हालत क्या होगी जो रेलयात्रा समाप्त होने पर पर्वत की चढ़ाई चढ़ने वाला है, और रेल यात्रा में ढेर-सा सामान बटोरते खरीदते चला जा रहा हो। बटोरते-बटोरते इतना हो जाता है कि उससे एक ट्रक भर जाये। कोई भी ऐसे आदमी को समझदार कहने के बजाय पागल अथवा नासमझ कहेगा, क्योंकि पर्वत की चोटियों पर सिर्फ अकेला ही (बगैर सामान के) जा सकता है। किन्तु वैसा आदमी क्या हम सभी नहीं हैं ? आज हर कोई पैसा कमाने में, बंगले बनवाने में, गाड़ी खरीदने में, कीमती सामान का अम्बार लगाने में जुटा है। ऐसे सामान का अम्बार लगाने से क्या फायदा जो हमसे एक दिन छूटने वाला है। जरा-सा भी सामान साथ नहीं जाने वाला है। यह तो ठीक है कि यात्रा पूरी करने के लिए कुछ सामान की आवश्यकता पड़ती

है, किन्तु इतना इकट्ठा करने से क्या लाभ जिसे छोड़ने पर एक दिन रोना पड़े। हमें इसलिए नहीं भेजा था कि तुम जाकर सामान इकट्ठा करना और ढेर लगाकर रखना। यहाँ की सारी वस्तुएँ मात्र सहायक हैं, साधन हैं। हमारा मुख्य कार्य आत्मा का विकास करना है। तभी अपने घर को पहुँच सकते हैं। आत्मा, जो ईश्वर का ही अंश है, हम इसकी शक्ति को पहचानें। इसके ऊपर पड़े परदे को, नित्य के स्वाध्याय, चिन्तन और साधना के माध्यम से हटा कर अपने लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयास करें। ऐसे तो कहने मात्र से कुछ नहीं होता जबतक कि आत्मा की शक्ति का अनुभव न हो। अगर उसकी एक हल्की सी भी अनुभूति मिल गई तो हमारा कल्याण हो जायगा। उस आत्मा की शक्ति का जिसने मूलशंकर को सामान्य मनुष्य से ऊपर उठाकर महर्षि दयानन्द बना दिया, मोहनदास को महात्मा गांधी बना दिया, डाकू रत्ना को वाल्मीकि बना दिया।

सचमुच ही वे सारी शक्तियाँ हमारे अन्दर भी विद्यमान हैं जिनका विकास कर हम भी महान् बन सकते हैं। हम व्यर्थ बाहर तलाश करते हैं। अपने अन्दर तो सब कुछ मौजूद है जब चाहें तब ले सकते हैं। केवल हम अपनी आवाज सुनना आरम्भ दें। अपने अन्दर देखना आरम्भ कर दें तो हमारा विकास आरम्भ हो जाये। हम तो अपनी आवाज (अन्तरात्मा की आवाज) सुनते ही नहीं। हमेशा ही मन की आवाज सुनते हैं। और जो बातें मन कोअच्छी लगती हैं वही करते हैं। मानवीय काया के अन्तर्गत दो बलवान् शक्तियाँ हैं—मन और आत्मा। मन तो कुमार्ग पर भी जा सकता है किन्तु आत्मा हमेशा ही सन्मार्ग पर चलता है—आज तक जो भी अच्छे और महान् बने हैं उन सबने आत्मा की आवाज सुनी है मन की नहीं। आज से हम सब भी कुछ ऐसा करें, कि हमें भी आत्मा की आवाज, अपनी आवाज सुनाई देने लग पाये। ईश्वर करे सम्पूर्ण संसार के लोग आत्मा की आवाज सुनकर सन्मार्ग गामी बनें, ताकि यह संसार स्वर्ग बन जाये।

नववर्षाभिनन्दन

ईश-दया-आनन्द प्रदायक नया वर्ष हो।
भारत में सर्वत्र शान्ति हो, समुत्कर्ष हो।
स्वास्थ्य समृद्धि समेत भवज्जीवन हो सुखमय।
मनोकामना यही 'रणंजय' की है सविनय।।

गढ़ अमेठी,
जनपद सुलतानपुर, अवध

रणंजय सिंह (राजा)
एम०एल०ए०

हास्य व्यंग्य

विज्ञापन का प्रभाव

समाचार पत्र का प्रथम पृष्ठ। एक कोने में लिखी थीं ये पंक्तियाँ 'समाचार-पत्र माँग कर नहीं—खरीद कर पढ़िए।' अनेकों ने पढ़ा होगा इस विज्ञापन को किन्तु हर बात की हर मन पर एक सी प्रतिक्रिया नहीं होती। सुखचैन देव ने भी ये पंक्तियां पढ़ीं। उनके मन को तो ऐसा लगा कि कोई बहुत बड़ा वरदान पा लिया है। आखिर उन्होंने अनेकों ज्ञानी ध्यानियों के उपदेश निर्देश सुने थे। क्योंकि उन्हें पढ़ने का शौक तो जितना था, उतना था ही, गुनने का उससे कई गुना था। इसलिए अपने जीवन का ताना-बाना भी पढ़ने की तुलना में गुनने की गाँठ के सहारे ही बुना था।

वे बार-बार पन्ने पलटते और भीतर के पृष्ठों को मोड़कर मुख पृष्ठ का भी सारा मैटर छोड़कर उसी विज्ञापन पर दृष्टि गड़ा देते। काफी सोच-विचार के बाद उपरोक्त पंक्तियों को अपने मस्तिष्क की स्लेट पर अपने ढंग से उतार कर समाचार-पत्र को समेटा और बन्द करके थैले में डाल लिया। मन ही मन एक संकल्प कर लिया था।

अगले दिन ही पहला कार्य जो किया वह यह कि समाचारपत्र देने के लिए आने वाले हाकर को निर्देश दे दिया कि 'तइया कल से अखबार न लाना।' हाकर ने अनुनय की, विनय की, कुछ गिड़गिड़ाया, भड़भड़ाया, किन्तु सुखचैन देव जी को न मना पाया। वे अपने निश्चय पर उसी भाँति अटल रहे जिस भाँति खुट-खुट बढ़ैया के सिर पर कलंगी।'

दूसरे ही दिन से उन्होंने उपरोक्त पंक्तियों को अपने ढंग से अपने जीवन में साकार कर दिखाने का फैसला कर लिया। प्रातःकाल उठे। पड़ोसी के द्वार पर ताका, झाँका। पड़ोसी महोदय श्री शांतिप्रकाश ने जब सुखचैन जी को द्वार से झाँकते पाया तो बड़े प्रेम से बुलाया। 'आइए, आइए, पधारिये।' सुखचैन जी भी देहरी लाँघकर भीतर प्रविष्ट हो गए। अभी न उन्होंने रात के पहने वस्त्र ही उतारे थे और न ही किया था स्नान। उन्हें कुछ विचित्र-सी भाव भगिमा में देखकर पड़ोसी महोदय बोले 'सुखचैन जी, कहिए। क्या बात है? इतना सवेरे बड़ी परेशानी-सी में पधारे हैं। कोई विशेष बात है क्या? सुखचैन जी ने कुछ लजाते और कुछ सकुचाते हुए उत्तर दिया।' नहीं परेशानी तो कोई नहीं। केवल जरा अपना अखबार दे दीजिए, पढ़ना है।'

शांतिप्रकाश जी थे नितांत भद्रजन। अखबार अभी खोला ही था, किन्तु तत्काल सुखचैन के हाथ मे उसे पकड़ाते हुए बोले 'क्या बात है, आज आप के यहाँ अखबार नहीं आया क्या?' सुखचैनजी ने जल्दी मे कुछ सोचा न विचारा तत्काल उत्तर दे मारा 'भाई साहब। अखबार तो पिछले १०.१२ वर्ष से पढ़ रहा हूँ। किन्तु कल से खरीदना बन्द कर दिया है।'

शांति प्रकाश जी ने शांत भाव से कहा 'ऐसी क्या बात हो गयी ? लगता है ठाकर से कुछ कहा सुनी हुई है। सुखचैन देव बोले 'ऐसा तो कुछ नहीं हुआ। हाँ, मैंने अखबार की शिक्षा पर अमल करना आरम्भ कर दिया है।'

'जी अखबार की शिक्षा ? कुछ बात अजीब-सी कह रहे हैं। आप ! ऐसी शिक्षा पा ली है। हमें तो अखबार में समाचार ही पढ़ने को मिले हैं, शिक्षा तो किसी साप्ताहिक पत्र या रविवारीय की कहानी आदि में ही मिल पाती है। परन्तु यह शिक्षा कैसी है कि जिसने आपका अखबार खरीदना छुड़वा दिया।'

सुखचैन दाँत निपोरते और केशों मे उँगली फेरते हुए बोले 'जी, आप जो अखबार मँगाते हैं, वही तो मैं भी मँगाता था। कल ही इसमें प्रथम पृष्ठ पर छपा था, 'अखबार मांग कर नहीं—खरीद कर पढ़िए।' बस साहब हमने तुरन्त फैसला कर लिया। कल से कर दिया है अखबार खरीदना बन्द और आज से दूसरी बात पर अमल आरम्भ कर दिया है अर्थात् माँगकर अखबार पढ़ने आये हैं।'

वाह साहब वाह, आप भी खूब हैं। आपने तो कमाल का मतलब निकाल लिया। उसका तात्पर्य तो जो आपने लगाया है, वह ठीक उलटा है। उन पंक्तियों में तो जो कुछ कहा गया है उसी के न करने का निर्देश है, जो आप ने करना आरम्भ कर दिया है। बड़े स्पष्ट शब्दों में तो अनुरोध किया गया है कि 'अखबार खरीद कर पढ़िए—माँग कर नहीं। सचमुच आप ने तो ऐसा नया अर्थ कर दिखाया कि आप तो नए भाष्यकार ही बन गए हैं। और आपके विवेचन का भी जवाब नहीं। शांति प्रकाश जी की धर्मपत्नी भी प्रातःकाल ही सुखचैन के पधारने पर उत्सुकतावश वहाँ आ गई थी। अतः उन्होंने भी इस मनोरंजक वार्ता में यह कहते हुए योगदान दिया 'वाह भाई साहब ! आप तो वास्तव में आचार्य हैं।'

और उस दिन के बाद से सुखचैन देव आसपास के इलाके भर में सुखचैनदेव के नाम से कम ही जाने जाते हैं।

'जैसे नकटे देव वैसे ऊत पुजारी' कहावत सर्वश्रुत है। सुखचैन देव के बारे में सही सिद्ध हो गई। इस चमत्कारी की बुद्धि का भी कुछ समझदार अपने काम के लिए उपयोग करने लगे। सुखचैन भी चैन सहित पकी पकाई चरने लगे। दूसरों के सहारे यत्र-तत्र विचरने लगे। पौ बारह है। चैन से छन रही है, कभी बिगड़ी थी, अब बन रही है। तब तक तो चलेगी ही, दाल गलेगी ही, जब तक कि बड़ों को इनकी बड़ों में नमक मिर्च के समान जरूरत है। जब जरूरत पूरी हो जाएगी तो फिर चौधर खो जाएगी। किन्तु जब तक जमती है जमा रहे हैं, किस्मत के कड़छे के भरोसे अपनी रूखी-सूखी से छुट्टी पाकर दूसरों की चूपड़ी उड़ा रहे हैं।

—दिग्दर्शनानन्द

अफगानिस्तान में वेद प्रचार की गौरव गाथा

वेदभक्त स्वामी सुधानन्द जी का पत्र स्वामी ओमानन्द जी के नाम

× × ×

श्रद्धेय स्वामी जी महाराज ! सादर चरण वन्दना !

मैं आपके श्रीचरणों के प्रताप से उस दिन (१३-६-१९७४) शाम को सवा छः बजे काबुल पहुँच गया था। ज्यों ही सामान छुड़ाकर बाहर जाने को हुवा तो स्वास्थ्य का प्रमाण पत्र मांगा, मेरे ना कहने पर तुरन्त डाक्टर को बुलाया गया। उसने तत्काल एक हाथ में इन्जेक्शन और दूसरे में नश्तर लगा दिया और कहा अब जाइये। मैंने सोचा आते ही अच्छी खातिर हुई। ज्योंही आगे बढ़ा सामने श्री दाऊद के बड़े से फोटो के नीचे फारसी भाषा में लिखा था—"अफगानिस्तान जिन्दाबाद, जम्हूरियत पाईन्दाबाद !" उसे देखते हुए मैं सोच ही रहा था कि अब कहाँ चलना चाहिये। क्योंकि मैंने तो किसी के नाम कोई पत्र भी नहीं लिया था, कारण कि प्रभु भरोसे को और पक्का करना चाहता था।

तभी पीछे से नाटे कद के एक लोहित वर्ण युवक ने—"स्वामी जी नमस्कार" कहा। मैं पीछे घूमा, उसने पैर छुए तथा दोनों हाथ अपनी छाती और आँखों पर लगाये और मुस्कराता हुवा विनीत मुद्रा में कहने लगा—हिन्दुस्तान से ? मैंने कहा—हाँ। वह बोला—घूमने ? मैंने कहा—धर्म प्रचार के लिये। पुनः कहने लगा—ठहरेंगे कहाँ ? मैंने कहा—यही सोच रहा हूँ। वह बोला—मेरा नाम ओमप्रकाश सेठी है। मैंने छः महीने से शंकर होटल खोल रक्खा है। क्योंकि जो हिन्दू, सिक्ख पंजाबी यहाँ आते हैं, वे मुसलमान होटलों में ठहर जाते हैं। वहाँ वे लोग गाय का मीट खा जाते हैं। एक बार खाने के बाद कई तो धर्मभ्रष्ट समझकर सदा ही खाते रहते हैं। इसी के बचाव के लिये मैंने यह होटल खोला हुवा है। आप दो दिन मेरे घर पर सेवा का मौका दें। फिर पीर रत्ननाथ की दरगाह में आपके धर्मप्रचार की व्यवस्था कर देंगे। मैंने स्वीकार कर लिया। पीर रत्ननाथ की समाधि पर बहुत बड़ा सत्संग भवन बना हुवा है। महात्मा काबुलनाथ जी से जब मैंने आपका जिकर किया तो वे हँसकर बोले—"हाँ ! वे रूस से आये थे तो दर्शन दिए थे। अब

आचार्य जी ने आपको भेजकर हम काबुलवासियों पर कृपा कर ही दी।"

यहाँ से १७ दिन पहले ही दिल्ली से आकर एक साधु गये हैं, जो मालिक साहब कहलाते हैं। वे इस गद्दी के बाबा पीर रत्ननाथ की पीढ़ी में ही हैं। वे काफी धन यहाँ से प्रति वर्ष ले जाते हैं। ठीक उसी तरह जैसे यहां के मुल्ला लोग अपने भक्तों के पास सदके बटोरने जाते हैं।

मैंने अपना कार्य प्रारम्भ किया है। वेद सम्बन्धी बातों को ये लोग बड़े ध्यान से सुनते हैं। दोनों समय कथा चलती है। प्राय: सभी हिन्दू सम्पन्न हैं। समय पर कारों और बसों से पहुंच जाते हैं। काफी प्रभावित हैं। मैंने शंका समाधान की इन्हें खुली छूट दे रक्खी है। कहते हैं इस तरह धर्म की व्याख्या करने वाला यहां कोई नहीं आया। यहां आशामाई का एक दूसरा मन्दिर भी है, जहां ५०० वर्ष से भी अधिक समय से लोगों द्वारा घी की ज्योति लगातार जलाई जा रही है। सम्भवत: यह आर्यों के अखण्ड यज्ञ का प्रतीक हो, जो अब घृत का दीपक बनकर रह गया है। लोगों की धर्म में पर्याप्त रुचि है। आपके आशीर्वाद और कुलवासियों की सद्भावनाओं से मैं अवश्य कुछ कर पाऊँगा, ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।

आपकी कृपा का पाथेय और आशीर्वाद लिये जहां-जहां भी जाता हूँ, एक अच्छा असर छोड़कर आगे बढ़ता हूँ। सिख भी मुझे अपना समझते हैं। मैं उन्हें चिढ़ाता नहीं, अपितु समझाता हूँ। अभी तक जलालाबाद, गजनी, रूस की सीमा पर कुन्दस, कज्जा, वज़ीरियाँ (जो आमू नदी के निकट है) में धर्म प्रचार करता हुवा जहाँ हिन्दू, सिखों के चार घर भी हैं, वहीं पहुंच जाता हूँ। सिक्खों के रागी प्राय: आते रहते हैं। इन पर अकाली असर है और हिन्दुओं को मुसलमानों से अधिक चिढ़ाने का प्रयास करते हैं। हिन्दुओं के पास मेरे आने से पहले कोई जवाब नहीं था। गुरुग्रन्थ साहब से वेद के उदाहरण देने के लिये मैंने भूली हुई पंजाबी फिर से सीखी है। काम चलाऊ फारसी भी सीख रहा हूँ। क्योंकि उर्दू लिपि मुझे पहले से आती थी अत: फारसी मेरे लिये खास समस्या नहीं है। यहां भारतीयों के प्रति खूब सम्मान है। पर आपको आश्चर्य होगा कि यह सब हिन्दी फिल्मों की वजह से है। हमारे दूतावास का इसमें बहुत कम योगदान है। ये अधिकतर व्हिस्की पीने और काकटेल पार्टी मनाने में मस्त रहते हैं। यहां के हिन्दू अफगानों से भी इनका प्राय: अच्छा व्यवहार नहीं है, बड़े मगरूर हैं।

जब आपके इस सेवक को यहां के हिन्दू, सिख तथा मुसलमान देखते हैं तो उनमें भारतीयता के प्रति एक श्रद्धा जागती है। तब मुझे ही नहीं मेरे गुरुओं को धन्य-धन्य कहने लगते हैं।

मेरा प्रचार का तरीका गायत्री, गीता, वेद और यज्ञ सबसे बड़ा माध्यम है। यज्ञोपवीत देता हूँ। जब पचासों हिन्दू युवकों की सुडौल छाती पर यज्ञ की वेदी पर बिठाकर यज्ञोपवीत डलवाकर सबका हाथ एक-दूसरे से पकड़वाकर पंक्ति-सी बनाकर अन्तिम के हृदय पर हाथ धरके ओम् मम व्रते ते हृदयं दधामि—कहकर व्याख्या करता हूँ तो लोग अश-अश कर उठते हैं कि स्वामी! तुम-सा कोई नहीं देखा कि देवियों को भी यजमान बनाते समय यज्ञोपवीत देता हूँ और कहता हूँ मर्दों ने तुम्हारा छीन लिया था, अब मैं दुबारा दिला रहा हूँ। इस यज्ञोपवीत को जीवनभर न उतारना। वे निहाल हो उठती हैं।

यहां पण्डित बड़े दुराचारी हैं अत: हिन्दू बड़े डावांडोल हैं। जन्माष्टमी का सही स्वरूप भी इन्हें मनाकर दिखाने का आयोजन करवाया जा रहा है। परसों एक शादी भी वैदिक धर्म से कराऊंगा। फिर पाकिस्तान की सीमा पर बसे खोस्त में

जाऊंगा। वहां के हिन्दू पश्तो बोलते हैं, लड़कियों के मुसलमानों की तरह पैसे लेने लगे हैं। ये दोनों काम वहां जाकर छुड़वाने का विचार है। वहां लगभग हजार हिन्दू हैं। फिर वहां से आकर कन्धार जाऊँगा। यहां मुसलमान अपने को आर्य कह कर गर्व अनुभव करते हैं। अत: धर्मान्धता का कोई खतरा यहां नहीं है। आप पत्रोत्तर देन में देरी न करना। आपकी एक थपकी मुझे कितना सम्बल देती है यह मैं ही जानता हूँ। आपका यह सेवक अपने कार्य से भविष्यत् में आने वालों के लिए फूलों की सड़क बना देगा। पर यहां ठहर वही सकेगा जो मनसा वाचा कर्मणा सदाचारी होगा। यहां का दहकता और आक्रामक सौन्दर्य साधारण व्यक्ति को अपने में समा लेता है। अत: जिसे यहां भेजें वह पूरा भरोसे का होवे।

मुझे यहां यातायात के अच्छे साधन उपलब्ध हैं। अत: अफगानिस्तान में दो बार ओर-छोर घूमकर लोगों की भारतीय वैदिक परम्पराओं और आर्यमर्यादाओं से पुन: सम्बन्ध जोड़ने की व्यक्ताव्यक्त भावनाओं को गहराई से पकड़ पाया हूँ। आपके बड़े श्रद्धालु बी० के० थापर भी यहां आये थे जो बामयान में बुद्ध भगवान् की संसार में सबसे बड़ी खड़ी प्रतिमा की पुन: मरम्मत करा रहे हैं। जब मैंने गुरुकुल झज्जर का जिकर किया तो उन्होंने वहां म्यूजियम देखने और आपके साथ अपने सम्बन्धों की चर्चा की और हरयाणा की जनता तथा देश के प्रति आपकी निष्ठा को पुन:-पुन: सराहते रहे।

कई दिन ऐतिहासिक पुरुष राजा महेन्द्र प्रताप जी के सम्पर्क में बीते, जो ८८ वर्ष की वृद्धावस्था में भी आर्यन पेशवा के रूप में काबुल आये हुए हैं। वे श्री दाऊद साहब से भी मिले। भविष्यत् के विषय में भी कई प्रोग्राम उन्होंने देने चाहे, पर ठीक समय आने की इन्तजार करने को भी कहा। अर्थात् जनता और अधिक जागरूक होकर अपनी प्राचीनता को अधिक गहराई से अपनायेगी। ऐसा उन्होंने आश्वासन दिया। मैं अपनी तीन महीने की सेवाओं से यहां के कुछ-कुछ वाममार्ग प्रधान हिन्दू समाज में वैदिक मर्यादाओं के प्रति एक भूख जगा पाया हूँ। इसमें धर्म के ठेकेदारों के साथ हलके-हलके से टकराव भी आये, पर वे समय के साथ-साथ सब अनुकूल होते गये। पर अब मेरे यहां से जाने के बाद...? यहां काबुल हवाई अड्डे तक तो कई हिन्दू साधू आते हैं पर अंग्रेज चेलियों के साथ सीधे योरुप उड़ जाते हैं। कोई ऐसी व्यवस्था हो जिससे समय की नब्ज पहचानकर प्रचार कर सकें। ऐसे आर्य-मर्यादाओं के प्रति पूर्ण श्रद्धालु, विद्वान् चाहे कम हों, पर जिन्हें अपने चरित्र पर पूर्ण भरोसा हो, ऐसे महानुभाव यहाँ लगातार आते रहें। क्योंकि हिन्दू धर्म के नाम पर यहां वाम-मार्ग फैलने के बहुत अवसर हैं। आप कृपया एक बार अफगानिस्तान कम से कम दो सप्ताह के लिए समय अवश्य निकालें। बड़ी ऐतिहासिक सामग्री है। पत्रों द्वारा आदेश देते रहें। ब्र० विरजानन्द जी का पत्र भी बहुत प्रेरणादायक अनुभव करता हूँ। यहां से ईरान, टर्की और कम्युनिस्ट देशों को पार करता हुआ यूरोप पहुँचूंगा।

एशिया के देशों में प्रचार करके म्यूनिख (जर्मनी) से श्री स्वामी सुधानन्द जी लिखते हैं—

श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज ! सादर नमस्ते।

आप सदृश विद्वान् तपस्वियों के चरणों में बैठकर जो कुछ सीखा सुना था, उसे योरुप की धरती पर अध्यात्मवाद की गहरी भूख में तड़पते मानवों के हृदय में उसी पवित्रता से संजोकर अपने जीवन को सफल कर रहा हूँ। २७ सितम्बर की

शाम को सैकड़ों अफगानिस्तानवासियों की डबडबाई आँखों और सुबकते मुखड़ों की भावभीनी विदाई और उनकी भीगी-भीगी शुभकामनायें लेकर ईरान के लिये रवाना हुवा। पर अफगानिस्तान के अन्तिम नगर हिरात के आर्य बन्धुओं ने आग्रहपूर्वक मार्ग घेर कर रोक लिया। यहां आर्यों के कुल १२ घर हैं। इनका अपना छोटा-सा सत्संग भवन और श्मशान भूमि है। मालदार हैं। चाय और कपड़े के व्यापारी हैं। यहाँ के लोगों के कथनानुसार यह महाराज हर्षवर्द्धन की नगरी है जो हरिरोहद नदी के किनारे बसी हुई है। हरिरोहद कितना सुन्दर नाम है! जिस दिन ईरान के शाह भारत की राजधानी में उतर रहे थे, ठीक उसी दिन मैं भी शाह की राजधानी तेहरान के एकमात्र गुरुद्वारे में ऋषियों का सन्देश सुनाकर अपने को भाग्यशाली बना रहा था। भारतीय दूतावास समेत यहाँ भारतीय आज्ञापत्र पर लगभग ६८७ भारतीय हैं। इनमें अधिकतर सिख बन्धु हैं। मोने हैं तो थोड़े, परन्तु खूब धनी और फैक्टरियों के मालिक हैं। सिखों का गुरुद्वारा है। अन्य हिन्दुओं का कोई धर्मस्थान नहीं है। भाई मक्खनसिंह गुरुद्वारा के सैक्रेटरी हैं, बड़े मीठे और व्यवहार कुशल हैं। समय-समय पर हिन्दुओं से बड़ी मोटी रकम लेकर इन्हें दुहते रहते हैं। यहां इनका अपना हाई स्कूल है जो भारतीय ढंग से चल रहा है। धर्म शिक्षा इनकी अपनी है। मेरा यहां केवल एक व्याख्यान भाई जी ने करवाया। मेरे अपने ढंग का वैदिक विचारधारा-युक्त और केवल मत्था टेक धर्म से ऊँचा व्याख्यान सुनकर लोगों की बहुत इच्छा होते हुए भी मेरा और व्याख्यान नहीं करवाया। सेवा और मीठे व्यवहार से ही मुझे प्रसन्न करते रहे।

यहां के हिन्दुओं से भी मिला, पर ये तो केवल पैसे के लिये जन्मे जीव हैं, इससे आगे इनकी पहुँच नहीं। शायद इनको यह भी नहीं पता कि आखिर यह पैसा हम कमा क्यों रहे हैं, बस कमा रहे हैं। वैसे पैसे से एक आर्य युवक ने मेरी बिना मांगे मदद कर दी। मैं समझता था, सिखों में बड़ा संगठन होगा। पर यहां आकर देखा कि भारत से काम की तलाश में आये सिख युवकों को ये गुरुद्वारे में घुसने तक नहीं देते। वे बेचारे सत् श्री अकाल कहते हैं तो कोई जवाब नहीं देता। असल में पैसा ही धर्म और बिरादरी बनकर रह गया है। गरीब और जरूरतमन्द की कोई बिरादरी नहीं।

ईरान

ईरान की राजधानी तेहरान दिन रात चञ्चल सुहागन-सी सजी रहती है। हर शाम ७ बजे के बाद सारा ईरान शराब और वासना के लहराते सागर में समा जाता है। तेल के कुओं से निकली चांदी की चकाचौंध में ये होश भुला बैठे हैं। इतने खूबसूरत लोग धरती के परदे पर शायद ही कहीं देखने को मिलें, पर बेलगाम भोगवाद की दौड़ में ऊपर से सुन्दर दिखने वाले इन ईरानियों का अंग-अंग रोग ने जकड़ रक्खा है। चार-पांच साल में ही इनकी सुन्दर काली आंखों और पतले गुलाबी होंठ तथा लम्बी नाक समेत तीखे गोरे मुखड़े पर आंखों के नीचे आई कालिमा के घेरे इनके खोखले यौवन की साफ गवाही देने लगते हैं। रोजे के दिन थे, पर कोई रोजा नहीं था। बुरके की जगह बड़ी भीनी-सी चादर देहात में है, शहर में सबने टाँड पर रख दिया है। विवाह परम्परा खत्म हो गई है। जीवन में चार-पांच तलाक मामूली बात है। आप यहां बाजार में अनेकों युवा महिलाओं को बिना बाप का बच्चा गोद में लिए, अनेक गुप्त रोगों से झरते कलेवर लिए भीख मांगते देख सकते हैं। यहाँ सैकड़ों मासूम बच्चे गलियों में झिड़कियां खाते, फटे हाल घूमते दीखेंगे—

अपने मासूम चेहरे तथा निरीह निगाहों से जैसे हर आने वाले से पूछ रहे हों, बता सकते हो हमारे मां-बाप कौन हैं ? यह है मूर्खों के हाथ में आई बेहद दौलत और बेलगाम छोड़ी इन्द्रियों के परिणाम।

पर लगता है शाह का इसमें साफ हाथ है। वह चाहता है कि लोग रंगीनियों में समाये रहें और मैं राज्य करता रहूँ। इसलिये सभी मामलों में खुली छूट है, बस उसके खिलाफ कोई न बोले। पर यहां भी एक युवा शक्ति उभर रही है, जिसका रूस से सम्बन्ध है और बहुत सम्भव है कुछ ही वर्षों में यहां धमाका हो। एक बार हो भी चुका है, पर दबा दिया गया था। बहुत जल्दी यहां अच्छे चरित्रवान् प्रचारकों की आवश्यकता पड़ने वाली है। वरन् उस धार्मिक भूख में न जाने ये क्या निगल जायेंगे ? अतः कर्णधारों को कुछ दीवाने सदाचारी युवक तैयार करने चाहियें।

टर्की (तुर्किस्तान)

ईरान से चलकर जाहिल, बन्दर की तरह चंचल और लोमड़ी की तरह चालाक, घोर जनूनी मुसलमानों के देश टर्की में प्रवेश किया। यह इतना भयानक देश है कि बिना दाढ़ी, बाल और कड़ा उतारे कोई सिख यहाँ से गुजर नहीं सकता। बालों समेत को बसों से उतारकर बेआदर करते हैं। लोगों ने बहुत कहा स्वामी जी ! वायुयान से जाओ। पर मैं तो इनको गहराई से देखना चाहता था, अतः बसों और रेलगाड़ियों में सफर करके बीच-बीच में ठहर कर इस देश को पांचवें दिन पार किया। वेश मैंने अपना वही लम्बा चोगा और पगड़ी वाला ही रक्खा। प्रभु की बड़ी दया रही, मुझे तो सभी प्यार करते रहे। यहाँ कुर्द लोग तुर्कों से भले हैं और इन्हीं का संरक्षण तथा प्यार पूरी टर्की में मेरी रक्षा तथा सहायता करता रहा।

बड़े बुरे भाग्य थे स्वामी जी महाराज ! भारत के, जब इन नर नामधारी भेड़ियों ने भारत की पवित्र धरती को रौंद डाला था। आपस की फूट में जो न हो जाये वह थोड़ा है। बस सब मिलाकर यह कहा जा सकता है कि तुर्क तो तुर्क ही हैं। असल में यह गरीब देश है। मौलवियों की चपेट में फँसी यहाँ की मानवता कूप-मण्डूक बनी हुई है। गरीबी और अज्ञान के जो फल होते हैं, वे यहां भरपूर हैं।

बुलगारिया

यह टर्की से सीमा जोड़े मेहनती कम्युनिस्ट किसानों का हरियाला देश है। इन्होंने अपनी मेहनत से पहाड़ों पर भी अंगूर तथा कपास उगाकर इतना धन पैदा कर लिया है कि स्वयं छोटा होते हुए भी भारत जैसे विशाल देश की आर्थिक सहायता कर रहा है। यहां की गायें बड़ी दुधारू और सुन्दर हैं। किसान हर खेत के साथ गायों के लिये कुछ हरा चारा भी खेत के पास बोये रखता है। सवेरे लगभग ७॥ बजे सवेरे का दूध दोहकर छोटी गाड़ी में दो गायें जोतकर बच्चों समेत बैठकर खेतों में जाता है। वहां गायें स्वतन्त्र विचरण करके चरती रहती हैं। दोपहर का दूध खेतों में ही निकाल लिया जाता है। शाम को मकई के पके भुट्टों से भरी गाड़ी को ये ही गायें किसान के घर खैंच कर लाती हैं। शाम को घर आते ही फिर बाल्टी को दूध से लबालब भर देती हैं। दिन भर में २० या २५ किलो तक दूध देती हैं।

यहां के किसी नगर में मुझे भद्दे और नंगे चित्र देखने को नहीं मिले। कोई युवक और किशोरी समय से पहले कोई ऐसा मौका नहीं पाते, जिससे उनमें कामुकता उभरने का अवसर मिले। दिन भर अपनी पढ़ाई, व्यायाम और घर के कामों में

हाथ बंटाकर भरपूर नींद लेते हैं। अनडवान् (बैल) की भांति खूब खाते हैं। सचमुच यहां के युवकों के ऊँचे कन्धे, विशाल उभरे सीने, वलिष्ठ भुजाएँ तथा इठलाती कठोर जाँघें वेद के 'अश्मानं तन्व कृधि' का जीता जागता नमूना हैं। यहां की राजधानी 'सोफिया' सूफी सन्त-सी भावुक, छोटी, बड़े सुघड़ ढग से बसी, दर्शनीय और कमनीय है, पर यह सब होने पर भी, अन्त में किसी सुप्रीम (सर्वोच्च) सत्ता को माने बिना जीवन में खोखलापन-सा सूनापन-सा अनुभव करते हैं। यहां के कई प्रोफेसरों से मिलने का अवसर मिला। एक प्रोफेसर पुनर्जन्म पर गहरी खोज कर रहे हैं। जगह-जगह से प्राप्त पुनर्जन्म के समाचार और चित्रों का एक पूरा संग्रह इनके पास है। उन्होंने कहा—सुधानन्द स्वामी ! पुनर्जन्म तो मानने को हृदय कहता है, पर भगवान् भी है, ऐसा कुछ मानने की क्या जरूरत है। मैंने चुटकी लेते हुए बड़े विश्वास से कहा- आप इसी रास्ते, इसी धुन से, बढ़ते चले जाइये, आपका अगला कदम भगवान् की खोज में स्वतः बढ़ेगा। इस पर वह विश्वास और अविश्वास के बीच झूलता मेरी ओर देखता रहा। अस्तु ! यहां सब जगह लगभग सात-आठ वर्ष बाद वैदिक मिश्नरियों की भारी आवश्यकता पड़ने वाली है।

यूगोस्लाविया

यह हमारे स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्री पं० जवाहरलाल नेहरू के वृद्ध मित्र मार्शल टीटो का देश है। यह भी रूस से प्रभावित और बहुत सुन्दर देश है। यहां जब मैं प्रवेश कर रहा था तो द्वारपाल-सी बनी महिला ने ६ मिनट में सात बार ये शब्द दोहराये—मेरे देश में आपका स्वागत है, पर याद रखिये, प्रति दिन आपको यहां कम से कम सात डालर खर्चने होंगे। मेरे स्वीकृतिसूचक सिर हिलाने पर इसने मेरे पासपोर्ट पर अपनी प्रवेश आज्ञा अंकित कर दी। इन दोनों देशों में भारतीयों को वीजा लेने की आवश्यकता नहीं, केवल प्रवेश आज्ञा चाहिये। यूगोस्लाविया में होटल तो बहुत महंगे हैं। अतः मेरे जैसा कुल आठ डालर (भारतीय ५८ रुपये) लेकर भारत से चलने वाला फकीर इनमें कैसे ठहर सकता था। पर यहां पैसे दो और घर में अतिथि बनकर रहो, यह तरीका कुछ सस्ता है। इस प्रकार के अतिथिगृह अधिकतर यूनिवर्सिटी में पढ़ने वाली लड़कियां, देर तक क्वांरी रहने वाली युवतियां और विधवा महिलायें चलाती हैं। ये अपने अतिथियों को घर जैसे सभी आराम सुलभ कराने की कोशिश करती हैं। मुझे एक ने आ पकड़ा। मेरा थैला उतार कर अपनी कार में रख लिया तथा कुछ और भी बटेऊ (यात्री) बटोरे और हम सबको अपने घर ले आई। मुझे अलग कमरा जिसमें स्नानागार तथा शौचालय दोनों थे, दे दिया। ५ बजे थे, मैं गरम पानी से जो थकान में बड़ा सुखद है, मुंह-हाथ-पैर धोकर प्रभु के गुणानुवाद गाने में लीन हो गया। सात बजे उठा तो गहरी रात छाई हुई थी। देवी ने मेरे द्वार पर दस्तक दी मैंने हाथ जोड़कर सन्ध्या की नमस्ते उसे कही। देवी ने पूछा दो घण्टे लाइट बन्द करके सो गए थे क्या ? मैंने कहा—प्रभु की कृपाओं को याद कर रहा था। उसकी नीली आंखें आश्चर्य से फैल गईं और हंसी को दबाती-सी बोली दो घण्टे भगवान् का नाम ? मैंने कहा—हां बहिन ! कई जीवन भी उसकी कृपा के गीत गाये जा सकते हैं। फिर भोजन के लिए मेरी राय मांगने लगी, मैंने कहा—दो-तीन डबल रोटी के टुकड़े थोड़ा-सा मक्खन और आधा लीटर दूध। उसने कहा बस ? No egg ? No meat ? No wine ? (अण्डा, मांस, शराब आदि कुछ भी नहीं लेंगे ?) मैंने कहा—बहिन ! मैंने कभी जीवन में इनका प्रयोग नहीं किया। वह अपने माथे पर हाथ मारकर चली गई और अपनी छोटी बहिन के द्वारा मेरा भोजन मेरे कमरे में ही भिजवा दिया।

साढ़े नौ बजे मैं पढ़ रहा था तो द्वार पर पुनः थपकी पड़ी, मैंने द्वार खोला, वह बड़े सुन्दर वस्त्रों में लिपटी पूछ रही थी—आप रात्रि के नाच-रंग प्रोग्राम में तो हमारा साथ देंगे न ? मेरे आदरपूर्वक न कर देने पर वह पैर पटक कर बोली—हर बात में ना, आखिर कैसे अतिथि हैं हमारे आप ? मैंने कहा साल में अनेकों अतिथि आते हैं। अपने यहाँ एक मुझ जैसा भी एक रात निभालो बहन ! वह चलने लगी तो मैंने कहा—अब सवेरे आठ बजे से पहले मेरा द्वार न खटखटाना। बोली—हम तो रात को एक-दो बजे सोयेंगे। सवेरे ९ बजे से पहले उठने का तो सवाल ही नहीं। फिर व्यंग-सा फैंकती बोली—सवेरे फिर भगवान् को याद करोगे क्या ? मैंने कहा—हां जीजी ! वह मुझे भी भोला हिन्दुस्तानी कहकर अपनी नाच रंग की महफिल में समा गई और मैं स्वामी सत्यप्रकाश कृत Man and his Religion पढ़ता हुवा सो गया। यह अपने ढंग की छोटी-सी और ठोस पुस्तक है। यह पुस्तक पूज्य आचार्य ओ३मानन्द जी ने ब्रह्मचारी विरजानन्द जी समेत हवाई अड्डे पर जलती दोपहरी में नंगे पैर चल कर दिल्ली से चलते समय बड़े यत्न से मेरे पल्ले बांध दी थी। सवेरे मैं नित्य कर्मों से निवृत्त हो, ईश वन्दना और स्वाध्याय करके सवा आठ बजे निकला, तो देवी मेरा तथा अपना नाश्ता लेकर मेरे द्वार पर उपस्थित थी। वह उस समय सर्वथा बदली हुई थी। बड़ी गम्भीर, भावुक और आस्तिक-सी। उसने अपनी छोटी बहन को ताकीद कर दी थी कि तुम सभी अतिथियों को नाश्ता कराओ। मैं भारतीय स्वामी के साथ शाकाहारी नाश्ता करती हुई उससे बातें करूंगी। इनकी अपनी अलग भाषा है पर मेरे साथ टूटी-फूटी अंग्रेजी में ही बोलती थी।

वह मेरे साथ प्रातराश करती हुई भारत के विषय में उसकी खोपड़ी में भरी बहुत-सी बेबुनियाद बातों के विषय में मेरी राय जान रही थी। और साथ-साथ मुझ से एक दिन और ठहरने की जिद कर रही थी। मैंने उसके सभी सवालों का युक्ति-युक्त उत्तर देकर उसे अपने आगे बढ़ने देने के लिये राजी कर लिया और अपना बिल मांगा। वह बोली तुमने यहां लिया ही क्या है, जो बिल मांगते हो ? देखो, १७ घण्टे से तुम मेरे अतिथि हो। तुम्हारे ४ घण्टे भजन में, ६ सोने में, ४ पढ़ने में, एक स्नानादि में तथा दो खाने और बातें करने में बीते हैं। मैं नहीं जानती भगवान् है या नहीं, पर तुम्हारे जैसा पढ़ा लिखा जवान आदमी इतनी पवित्रतापूर्वक रहकर उसका भजन करता हुआ मेरे घर में ठहरे यह तो मेरा सौभाग्य है। वैसे भी तुम मेरे मित्र देश के बन्धु हो। पर मुझे आश्चर्य तो यह है कि यहां कई भारतीय ठहरे हैं, जो VODKA शराब के तो दुश्मन ही समझो और सभी मामलों में हमसे बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं। वे कैसे हैं, तुम कैसे हो ? मैं भारत के सन्तों के विषय में सुनती थी। बड़ी इच्छा थी देखने की, आज तुम आये और इतनी जल्दी जा रहे हो। अतः मैं कुछ नहीं लूंगी। मैंने कहा उन सात डालरों का क्या होगा ? वह बोली—इसकी आप चिन्ता न करें, मैं पुलिस को रसीद दे दूंगी। मैंने हंसकर कहा—देवी ! क्या यह आपका अपनी हुकूमत के प्रति धोखा न होगा। और मैं उठ खड़ा हुवा। वह बड़ी गम्भीर होकर बोली—मेरे अच्छे अतिथि, तुम जाओ। तुम्हारा भगवान् और मेरी शुभकामनायें तुम्हारी यात्रा सफल करें। तुम ही बताओ। मुट्ठीभर अन्न और थोड़ा-सा दूध जो यहां बहुत सस्ता है, इसके सात डालर आप जैसे व्यक्ति से ले लूं ? क्या यह मैं अपनी आत्मा के साथ धोखा नहीं करूंगी। और फिर बड़ी अजीजी-सी दिखाकर वह बोली—तुम जाओ, पर लौटते समय इधर से गुजरो तो मेरी कुटिया को न भूलना।

इसी तरह की कई रोमाञ्चक घटनायें घटती रहीं और मैं चलता रहा। यह

सच है कि प्रचार की दृष्टि से मैंने इन दोनों देशों में मुंह नहीं खोला, पर आप सदृश गुरुजनों द्वारा मेरे जीवन में भरी आस्तिकता और सदाचार पूर्ण व्यवहार से मैंने ईमानदारी पूर्वक भारतीय संस्कृति के प्रति इनका हृदय आकर्षित जरूर किया है।

आस्ट्रिया

इसके बाद १५ अक्टूबर को मैं ७४ लाख की आबादी के अब तक के मेरे देखे हुए देशों में सबसे सुन्दर देश आस्ट्रिया में पहुँच गया। यहां ऐसा लगा जैसे मेरी प्रतीक्षा की जा रही थी। रूप और दौलत में आकण्ठ डूबकर ऊबा हुवा योरुप बड़ी बेताबी से भारतीय ऋषियों द्वारा सींची संस्कृति का भक्त बनता जा रहा है। यहां हजारों युवक अनेकों संगठन बनाये शुद्ध शाकाहारी और पवित्र जीवन बिता रहे हैं। ये लोग जगह-जगह मेरे प्रवचन कराकर आसन, प्राणायाम सीख रहे हैं। जब मैं इन्हें भजन में बैठने का सही तरीका बताकर अन्त में तीन बार ओङ्कार पूर्वक लम्बा नाद गुञ्जार कर "ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्ति ओ३म्" कहकर चलने लगता हूँ तो ये मेरे स्वयं समर्पित सचिव श्री पीटर (Peter) से कहते हैं—पहले भी कुछ नहीं लिया था, अब तो बताओ स्वामीजी को क्या दे दें? तो पीटर मुस्कराकर कहता है—यह साधु कहता है कि मेरे देश भारत में अध्यात्म विद्या बेची नहीं जाती। जाओ! अपने जीवन को पवित्र और साधनामय बनाओ तथा भारतीय ऋषियों के गुण गाओ। तो सच मानिये गुरुदेव! सैकड़ों हैट आदर के साथ आसमान में उठ जाते हैं। महाराज जी! आप गर्व कर सकते हैं अपने इस सेवक पर इस विषय में, कि यही एकमात्र युवा फकीर इस यूरोप की धरती पर आया है, जिसने अध्यात्म विद्या पर टैक्स न लगाकर प्रभु और ऋषियों द्वारा प्रदत्त ज्ञान को बिन कंजूसी के, इन्द्रिय भोगों से लड़खड़ाई यहां की मानवता के तृषित हृदय में खुले हाथों उलीचा है। वरन जो भी योगी नामधारी व्यक्ति यहां आया, वही पैसा बटोरकर चलता बना। पर मैं तो उनका भी धन्यवाद करूँगा कि वे यहां आये और उन्होने इस योरुप के बिना नकेल के ऊँट का रुख भारतीय परम्पराओं की ओर मोड़ लिया। केवल यज्ञ पर बैठकर 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का घोष करने वालों से मैं इन्हें हजार दर्जे बेहतर मानता हूँ जिन्होंने हम जैसों के लिये ग्राउण्ड तो तैयार किया। अब बड़े आनन्द से यह सेवक उन सज्जनों द्वारा बनाये खाली गलेफों में ब्रह्मा से जैमिनी और ऋषि दयानन्द से सर्वदानन्द, आत्मानन्द, स्वतन्त्रानन्द, वेदानन्द, सर्वदानन्द तथा ओ३मानन्द तक आई ज्ञान की ऊर्जा को भर रहा है।

यह पीटर यहां का बारहवीं पास, छरहरे बदन का सुन्दर आस्तिक युवक है, जो मेरे अस्ट्रिया में प्रवेश करते ही अपनी नौकरी छोड़कर छाया की तरह मेरे साथ है। मुझ पर खर्च कर रहा है। सारा प्रबन्ध करता है, मुझे खिलाकर खाता है, सुलाकर सोता है। मैं पूछता हूँ पीटर! तुम यह सब क्यों करते हो। वह कहता है— You are a great soul, you are saving the young Generation of my country without getting a penny. So it is my duty to serve you. (आप एक महान् आत्मा हैं। आप बिना एक पैसा लिये मेरे देश की युवा शक्ति की सेवा कर रहे हैं। अतः यह मेरा कर्त्तव्य है कि मैं आपकी सेवा करूँ।)

इस प्रकार लोगों की कारें मेरी कारें हैं। मुझे एक रात अपने घर ठहराने के लिये पीटर से मीठा-मीठा झगड़ा करते हैं। कभी-कभी तो लाटरी डालकर मुझे अपने घर ले जाते हैं। इनकी जेबें मेरी जेबें हैं। जब जर्मनी जाने को कहता हूँ तो यह पीटर अपनी प्यारी नीली आंखों में पानी भर लाता है। अब भी यह दीवाना मेरे

साथ है। इस प्रकार आप सदृश गुरुजनों की कृपा और मित्रों की शुभकामनाओं से—

हर रोज नया घर नये लोग, हर रोज नया सवेरा नई जगह।
मेरा पग बढ़ता जाता है, वेदों का शुभ संदेश लिये।।

जैसे कई चतुर आर्य समाजी 'ईसाइयत बढ़ रही है' का नारा देकर पैसा बटोरते हैं, यहां भी पोप ईसाई चिल्ला रहे हैं—योरुप को हिन्दू बनाने का भारत का षड्यन्त्र है। परन्तु भेड़ें भाग रही हैं। चर्च अजायबघर बनकर रह गये हैं। यदि यही हालत रही तो हमारी तपस्या रंग लायेगी—

ब्रह्म तेज मुख पर हाथों में कला दीप्त विज्ञान।
लेकर फिर उभरेगा इस धरती पर हिन्दुस्तान।।

यह पत्र अधिक से अधिक लोगों को अपना बन सके तो शायद किसी को प्रेरणा मिले। इन बातों में १०० प्रतिशत सचाई है। मेरे हृदय की तपन है। समय की पुकार है। अब कल से जर्मनी में हूँ। प्रभु की कृपा से यहां भी वे ही ठाठ हैं। पर मौसम बर्फ और वर्षा के कारण बड़ा सिलबिला और बेशऊर-सा होता जा रहा है। देखो कब तक चलता है। आप एक बार हृदय से आशीर्वाद दे दें। फिर फतह ही फतह है।

आपका ऋणी—
सुधानन्द योगी

★

स्वामी सुधानन्द जी

स्वामी सुधानन्द जी आजकल यूरोप के देशों में वैदिक धर्म का प्रचार कर रहे हैं। ये स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज तथा स्वामी आत्मानन्द जी महाराज के शिष्य हैं। उन्हीं से अध्ययन करते रहे हैं। गुरुकुल झज्जर में भी पढ़े हैं। ये अत्यन्त सदाचारी और पवित्र आर्य संन्यासी हैं। इन्होंने अनेक ब्रह्मचर्य शिक्षण शिविरों में भी भाग लिया है। जहां जाते हैं, वहीं लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव डालते हैं। ग्राम धौड़ (रोहतक) में ये कुछ समय रहकर ईश्वर चिन्तन किया करते थे। उसी समय इनके सद्प्रभाव से पूरा ग्राम आर्यसमाजी बन गया। इन्होंने अण्डमान निकोबार द्वीप समूह में भी तीन मास तक वैदिक धर्म का नाद गुंजाया। वहां के लोगों के घरों में अनेक बड़े-बड़े यज्ञ किए। वहाँ की जनता में इनके प्रचार का इतना प्रभाव हुआ कि आज तक पत्र आते रहते हैं कि उन्हें फिर भेजा जाये।

उन्होंने रेवाड़ी के निकटवर्ती क्षेत्र में लाखों रुपया जनता से एकत्रित करके अनेक स्कूल कालिज खोले। सिधरावली ग्राम का विशाल कालेज इन्हीं की देन है। ये हिन्दी, संस्कृत, पंजाबी और अंग्रेजी के अच्छे विद्वान् हैं। इन्होंने १३ जून से २७ सितम्बर १९७४ तक साढ़े तीन महीने सारे अफगानिस्तान में वैदिक धर्म का प्रचार किया है। अब जर्मनी आदि यूरोपियन देशों में योगासन, प्राणायाम और यौगिक क्रियायें सिखा रहे हैं। वहां का वर्णन उन्हीं के शब्दों में आप ऊपर पढ़ चुके हैं।

—श्री गजानन्द आर्य

......और वह आर्य बन गया

नगर के धनीमानी एवं आर्य समाज के प्रधान द्वारा समाज सुधार सम्मेलन का आयोजन किया गया। सर्वसम्मति से दहेज प्रथा का विरोध हुआ, प्रस्ताव पारित कर दिया गया एवं उन्हीं की अध्यक्षता में दहेज हटाओ समिति का गठन कर दिया गया।

प्रधान जी के ज्येष्ठ पुत्र सत्यव्रत के विवाह की चर्चा घर में चल रही थी, लेन-देन के विषय को भारी प्रमुखता दी जा रही थी। पुत्र को पिता का व्यवहार विचित्र-सा लगा। उसने साहस किया और बोला "मेरे विवाह में यदि दहेज लिया जाएगा तो मैं विवाह नहीं कराऊँगा।"

प्रधान जी ने पुत्र को समझाने का प्रयास किया। दहेज को अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप और आवश्यक बताया। उन्होंने दूसरा पैंतरा बदला तथा बोले तुम्हारी माता की सुधार सम्बन्धी बातों पर कोई निष्ठा नहीं। अतः दहेज तो लेना ही पड़ेगा, बेटा!

सत्यव्रत आक्षेपपूर्ण मुद्रा में बोल उठा "आप आर्य होकर अनार्य सरीखा आचरण करते हो, जो मुझे सह्य नहीं। मेरा विवाह होगा तो दहेज के बिना ही।

पिता क्रोध से दग्ध होते हुए गरजे, 'यदि घर में रहना है, तो घर की मान-मर्यादा के अनुकूल ही विवाहादि होंगे अन्यथा घर छोड़ कर चला जा। मुझे तेरी कोई आवश्यकता नहीं है। जा साधु बन जा"

दो विरोधी विचार आपस में टकरा गए और सत्यव्रत ने अपने मान्य सत्य की लाज रखने के लिए घर त्याग दिया।

युवक अपनी नगरी से दूर एक स्थान पर पहुँच गया। वहां था एक सुप्रसिद्ध संन्यासी का आश्रम। वहां पहुंचा तो कोई भी न मिला। पुनः समीप के नगर में लौट आया और रात एक धर्मशाला में गुजार दी। पुनः अगले दिन प्रयास किया तो भी संन्यासी जी के दर्शन न हो पाए। किन्तु तीसरे दिन साध पूर्ण हो गयी।

स्वामी जी ने युवक से परिचय एवं आवास आदि के बारे में पूछताछ की और जब स्थिति स्पष्ट हुई तो संन्यासी मन में द्रवित हो उठे। वह बोले "वत्स तुम मुझ से क्या चाहते हो?"

युवक बोला, "स्वामी जी! मेरी एकमात्र इच्छा यही है कि मुझे आर्य बना दीजिए। इसी हेतु मैं श्रीचरणों में उपस्थित हुआ हूँ।"

स्वामी जी बोले, "सत्यव्रत! आर्य-अनार्य के विवाद में न पड़ो। आज तो मानव इन दोनों में कोई भेद ही नहीं समझता। इतना ही नहीं विभेद करने वाले "पिछड़े हुए" गिने जाते हैं। अतः भइया, जहां जैसा बनना उचित लगे, वैसा बन जाना।"

युवक ने साहस संजोया और कहा, "महाराज आप से ऐसे वचन सुनने की तो कल्पना भी मैंने नहीं की थी। ऐसी बातें तो मुझे न जाने कितने मुखों से सुनने को मिलती हैं। मैं तो कुछ विशेष ही पाने आया था आपसे।"

अच्छा वत्स ! यदि तुम्हारा आर्य कहलाने का ही आग्रह है तो तुम्हें सरल-सी विधि बताए देता हूँ। किसी भी आर्य समाज में जाकर सदस्यता ग्रहण कर लो।"

सत्यव्रत का मानसिक विक्षोभ और भी अधिक बढ़ने लगा और वह बोला, स्वामी जी तनिक मेरी जिज्ञासा का मूल्यांकन तो कीजिएगा। मैंने आपके चरणों में उपस्थित होने की कामना को हृदय में बसाए ही अपने नगर से यहां तक की दूरी तय की है। मेरी भावना को समझने की तो कृपा कीजिए।"

'पुत्र ! तुम्हारी भावना तो मैं समझता हूँ। किन्तु तुम्हें सरल-सा मार्ग बताया था। यदि वैसा नहीं करना चाहते तो एक और भी सरल-सा उपाय है। वह यह है कि कुछ पढ़ो लिखो और अच्छे वक्ता बन जाओ। समाज के उत्सवों और सम्मेलनों में लच्छेदार भाषण करना सीख लो। तुम सर्वत्र आर्य नेता और विद्वान् के रूप में मान्य हो जाओगे। अनेक स्थानों पर तुम्हारी चर्चा होगी और वह भी एक कर्मठ आर्य नेता के रूप में," संन्यासी बोले।

सत्यव्रत की मानसिक अधीरता में और भी वृद्धि हो गई और वह बोला, "स्वामी जी ! ऐसा बनना तो मेरे जीवन का उद्देश्य नहीं।"

"तो वत्स ! एक और भी मार्ग है। वह यह कि तुम किसी अच्छे आर्य समाजी नेता के विश्वासपात्र बन जाओ। वह तुम्हें अपने सहयोगियों की सूची में शामिल कर लेगा। जब किसी संस्था का निर्वाचन होगा तो तुम्हें भी उसमें अपने साथ ले लेगा। फिर तुम ही नहीं तुम्हारा परिवार भी निष्ठावान् आर्य समाजी परिवार के रूप में विख्यात हो जाएगा। इसके लिए भी वैदिक साहित्य के अध्ययन की अधिक आवश्यकता नहीं। आर्य समाज के मुख्य-मुख्य सिद्धान्त अवश्य ही स्मरण होने चाहिए। किन्तु नियमोपनियमों का बारीकी से अध्ययन करना उससे भी अधिक जरूरी है।" संन्यासी ने कहा।

सत्यव्रत का मानस और भी अधिक व्याकुल हो उठा। उसने कहा, 'स्वामी जी महाराज, मैं आर्य बनना चाहता हूँ अनार्य नहीं। आपने जो उपाय अभी बताया उससे तो मैं अनार्य ही बनूंगा। क्योंकि यदि इसी मनोवृत्ति को धारण कर लिया गया तो फिर पाखण्डी जन और आर्यजन में अन्तर ही क्या रहेगा।

"अच्छा तो एक और भी सुगम-सा मार्ग है भइया ! खूब धन कमाओ। दो-चार संस्थाओं को दान भी देते जाओ। वे तुम्हारा गुणगान करेंगी। देखादेखी अन्य संस्थाओं वाले भी तुम्हारे पास आएंगे और तुम्हें पलकों पर बैठाएंगे। तुम्हें सभापति बनने का भी निमन्त्रण देंगे। पहले सकुचाना और फिर स्वीकार भी करते जाना। तुम्हारा नाम तुम्हारे नगर ही नहीं सारे क्षेत्र में धनी मानी और दानी आर्य जन के रूप में गूंजने लगेगा," स्वामी जी ने कह दिया।

सत्यव्रत के लिए स्थिति असह्य-सी होती जा रही थी। वह तनिक आक्रोश सहित बोला 'स्वामीजी, यदि ऐसी ही झूठी शान-शौकत और प्रतिष्ठा की प्रगति मुझे अभीष्ट होती तो मैं घर ही न त्यागता। मेरे पिता सुसम्पन्न हैं। कृत्रिमता से घृणा ने ही तो मुझ से घर बार का त्याग कराया है। यदि कृपा करनी है तो मुझे श्रेष्ठ बनने का वास्तविक मार्ग बताइए। ताकि मैं स्वयं को सुधारूँ और समाज को भी कुछ संवारूँ।

स्वामी जी की कसौटी पर खरा उतर चुका था सत्यव्रत। अतः बोले, "वत्स! मैंने तुम्हें परख लिया। तुम कसौटी पर खरे उतरे हो। मैं तुम्हारा मार्ग-दर्शन करने का प्रयास करूंगा। सत्यव्रत मैंने स्व अनुभव के आधार पर आर्य समाजियों को दो भागों में विभाजित कर दिया है। एक भाग का नाम मैंने रखा है "श्रेयमार्गी आर्य-समाजी। ये संख्या में तो अल्प हैं, किन्तु स्तुत्य। उनका मार्ग भी कष्टमय होता है। परन्तु कितनी पवित्रता और शान्ति इस मार्ग के अनुयायियों को मिलती है, उसकी चर्चा तो फिर करूंगा। दूसरी श्रेणी वालों को मैंने प्रेममार्गी आर्यसमाजी की संज्ञा है, जो संख्या में तो बहुत हैं किन्तु न वे अपना जीवन बना पाते हैं और न दूसरे का ही बना पाते हैं। मैं तो तुम्हारी परीक्षा ले रहा था, तुम सँभल ही गए हो। शिष्य होने का अभिनय करने के लिए अनेक जन मेरे पास पाए। उन्हीं में से कुछ की चर्चा करूंगा। उनमें से कुछ तो उच्च पदों पर आसीन हैं। नाम के आगे आर्य शब्द भी लगाते हैं। किन्तु अपने जीवन और व्यवहार से इस संज्ञा को लजाते हैं। उन्हें पीने के लिए सुरा चाहिए, भोजन के लिए होटल और मनोरंजन के लिए कैबरे नृत्य। और फिर इस शान-शौकत और ठाट बाट के लिए रिश्वत लेने को वे अपना हक मानते हैं। ऐसे ही कई आर्यसमाजी राजनैतिक नेता भी कहे जाते हैं। जो पद प्राप्ति के लिए अपने दल को फटे वस्त्र के तुल्य त्याग जाते हैं। उन्होंने राजनीति में समाज की गरिमा बढाई नहीं अपितु गिराई है। वस्तुतः ये गंगा गए तो गंगाराम और यमुना गए तो यमुनादास की उक्ति ही चरितार्थ करते हैं।

"बेटा, कुछ अखाड़ेबाज भी हैं, जो लोगों में मेरा शिष्य होने के दावे करते हैं। ये आर्य समाज और आर्य संस्थाओं में जिसको चाहे अपनी तिकड़म से गद्दीनशीन कर दें, जिसको चाहे हटा दें। एक बार मैं एक परिवार में ठहरा। बड़ा नाम सुना था गृहपति का—नितांत धनाढ्य है वह। ग्रहपत्नी और बालकों ने आकर नमस्ते भी की। एक बालक ने गायत्री मन्त्र भी उच्चारा। किन्तु जब मैं उनकी अतिथिशाला में पहुँचा तो वहां स्वामी दयानन्द के चित्र को पूँछधारी हनुमान, चूहा पीठासीन गणेश और रासलीला में रत श्रीकृष्ण के चित्रों से घिरा पाया। जिज्ञासु भाव से गृहपति से इसकी चर्चा की तो बोले, "स्वामीजी, हम तो गृहस्थी हैं, सभी को खुश रखना पड़ता है। देवी किसी का तो बालक किसी देवता का चित्र लगाना चाहता हैं। प्रभु की कृपा है कि किसी बालक ने किसी फिल्मी कलाकार का चित्र लगाने का हठ नहीं किया।" बेटा, अनायास ही मेरे मुख से निकल पड़ा। "इस राष्ट्र का ईश्वर ही रक्षक है।"

"वत्स आर्य समाज के नाम पर चलने वाली कई संस्थाओं को भी निकट से देखा है। समाज के नाम पर चल रहे विद्यालयों में हवन यज्ञ नहीं होता शिक्षक और छात्र खुलकर धूम्रपान करते हैं। अनेक आर्य संस्थाओं पर परिवारों का कब्जा है। बहुत-सी आर्य समाज ऐसी हैं, जहां ताले पड़े हैं। कई सक्रिय समाजें कही जाती हैं, जिनमें साप्ताहिक सत्संग मात्र को ही उनकी सक्रियता का मापदण्ड मान लिया गया है।"

सत्यव्रत उकता रहा था—बोल उठा 'महाराज आप तो यह राम कहानी सुनाकर अपना मन हल्का कर रहे हैं और मेरा मानसिक बोझ बढ़ा रहे हैं। कृपया इस प्रसंग को बन्द कर दीजिए।

"अच्छा पुत्र, अब तुम्हारे ही विषय पर आ रहा हूँ। परन्तु पहले अपना दुर्गुण बता रहा हूँ। मैं गुरु दक्षिणा नहीं अपितु फीस लेकर शिष्य बनाता हूँ। तुम उसे दक्षिणा भी चाहो तो कह लेना। मेरी इस सम्बन्ध में तीन शर्तें हैं, जिनका

पालन करने की तुमसे सहमति चाहूँगा। तुम्हें अपने पिता के द्वारा क्रोध में कहे गए शब्दों को सार्थक करना है कि "जा साधु बन जा।" साधु का अर्थ है पवित्रात्मा बनना। तुम अपने आचार-विचार और व्यवहार में ऐसे बन जाओ कि साधु भी तुम से ईर्ष्या करे। कुछ सीख समझकर तुम्हें अपने घर पर लौटना होगा और वहाँ आदर्श गृहस्थी बनकर रहना होगा। क्योंकि अच्छा गृहस्थी ही अच्छा वानप्रस्थ और संन्यासी भी बन सकेगा। बोलो, है यह फीस चुकाना स्वीकार!"

"स्वामी जी कल्पनाएँ तो कुछ और ही थीं। पर आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। अब दूसरी आज्ञा दें।" सत्यव्रत ने उत्तर दिया।

"सत्यव्रत तुम्हें स्वयं को तथा अपनी सन्ततियों को ऐसा आर्य बनाना होगा कि तुम्हारे माता पिता भी स्वयं को धन्य मानने लगें। उनकी सेवा शुश्रूषा में, आज्ञा-पालन में इतनी दक्षता हो कि अन्य परिवारों के माता पिता भी कह उठें कि पुत्र हो तो सत्यव्रत जैसा और तीसरी शर्त यह है कि तुम्हें अपने परिवार को प्राप्त सामाजिक प्रतिष्ठा भी बनाए रखनी होगी और अपने व्यवसाय को उन्नत और परिष्कृत करना होगा। कहीं कोई त्रुटि हो तो उसे निकालना भी होगा।"

सत्यव्रत ने स्वीकार! स्वीकार! स्वीकार! कह कर कहा—"ईश्वर की अनुकम्पा और आपके आशीर्वाद से मैं ऐसी शिक्षा और दीक्षा लेकर जाना चाहूँगा कि गुरुजनो, स्वधर्म और स्वराष्ट्र की गरिमा बढ़ा सकूं तथा आपसे प्रमाणपत्र लेने का अधिकारी बन जाऊँ।"

संन्यासी जी बोले "मुझ से प्रमाणपत्र की आशा न रखना। वह तुम्हें मिलेगा तुम्हारे परिवार, संस्थान और समाज से। मेरे पास रहकर तुम परीक्षा पास नहीं करोगे अपितु उसकी तैयारी करोगे। परीक्षा तो तुम्हारी जीवन पर्यन्त होती रहेगी।"

सत्यव्रत बोल उठा, "जो आज्ञा महाराज!"

आर्य बनने के लिए महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों का अध्ययन ही पर्याप्त है। तुमने आर्योद्देश्य रत्नमाला का नाम तो सुना ही होगा। यह वास्तव में ही रत्नों की माला है। आर्य समाज के मान्य सिद्धान्तों की परिभाषा की यह सुन्दर पुस्तक सर्व प्रथम मनन करने योग्य है। अधिकांश आर्य समाजियों को तीर्थ-पंचायतन पूजा, पुराण आदि शब्दों से इतनी घृणा है कि वे उन्हें अवैदिक कह कर टाल देते हैं, किन्तु महर्षि ने इन शब्दों का बड़े सुन्दर ढंग से समर्थन किया है। सगुण निर्गुण परमेश्वर की उपासना का अभिप्राय बहुत से आर्यों ने अभी तक नहीं समझा। ईश्वर-जीव प्रकृति का परिचय सक्षेप में इसमें बताया गया है। प्रारब्ध क्या है आदि शब्दों का अर्थ देखते ही बनता है। इसलिए सर्वप्रथम इस छोटी-सी पुस्तक को ध्यान से पढ़ो। इसमें वर्णित १०० नामों की व्याख्या एक शब्दकोष का काम देगी।"

"गुरुजी! इस छोटे-से ट्रैक्ट को पिता जी ने बहुत बंटवाया है पर घर पर किसी ने पढ़कर सुनाया हो ऐसा याद नहीं।"

"बेटा! यह तुम्हारे घर की ही बात नहीं। प्रायः सभी घरों में ऐसा मिलेगा। देखो, एक और पुस्तक, इसका नाम है 'व्यवहार भानु।' इसे पढ़कर भी यदि किसी ने आर्योचित व्यवहार नहीं बनाया तो दोष किसका? इसे खूब ध्यान से पढ़ना होगा। विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी है। शिक्षक कैसे हों, विद्यार्थी कैसे हों, शिक्षा कैसी हो, शिक्षा प्राप्त करने के साधन क्या हों, आदि उपदेश बड़े सुन्दर ढंग से लिखे गये हैं। विद्या-अविद्या, काम-अकाम, धर्म-अधर्म, शिक्षा-कुशिक्षा, जड़-बुद्धि, तीव्र-बुद्धि,

मूर्ख बुद्धिमान आदि के लक्षण इसमें बताए गए हैं। राजा-प्रजा, ग्राहक-दुकानदार, माता-पिता व आचार्य के कर्त्तव्य पर यदि कुछ जानना हो तो यह छोटी-सी पुस्तक डायरेक्टरी का काम देगी।"

"स्वामी जी ! इस पुस्तक को तो मैं किस्से-कहानियों की पुस्तक समझता था। पर इसमें गागर में सागर भरा हुवा है। यह अभी समझ में आया।"

अब यह तीसरी पुस्तक देखो, यह है पंच महायज्ञ विधि। मनुष्य का कोई कर्त्तव्य बाकी नहीं रखा इसमें। पांच यज्ञों की विधि पर प्रकाश डाला गया है। पहला यज्ञ करने वाला संसार का सबसे महान् आस्तिक बनेगा, इसमें सन्देह नहीं। इसे करने के लिए मनुष्यों को बहुत तैयारी करनी पड़ती है। यज्ञ, नियम, आसन, प्राणायाम आदि सभी क्रियायें इसमें आवश्यक हैं। ये सब क्रियाएँ यहां तुम्हें सीखनी हैं ताकि तुम ब्रह्म यज्ञ करने के अधिकारी बन सको। इस ब्रह्मयज्ञ में पवित्र वेदमन्त्रों का संकलन स्वामी जी महाराज का बहुत ही अद्भुत कार्य है। मन्त्रों के अर्थों और भावार्थों पर विचार करते हुए पूरी तन्मयता से भक्त जब भगवान की शरण में आता है तब कष्टों में भी प्रभु का प्यार और आशीर्वाद झलकता है।"

"स्वामी जी महाराज ! आपकी कृपा से इस यज्ञ का यजमान बनाने योग्य हो सकूंगा ऐसी आशा है।"

"सत्यव्रत नकली यजमान किसी भी यज्ञ में सफल नहीं हो पाते। दूसरा जो देवयज्ञ है इसमें मनुष्य को अपनी सारी उपलब्धियाँ प्रभु की इस रचना को अधिक से अधिक सत्यम् शिवम् सुन्दरम् बनाने के निमित्त अर्पण कर देने का विधान है। उदाहरणस्वरूप अग्निहोत्र जैसा पवित्र कार्य इसी देवयज्ञ के अन्तर्गत आता है। मनुष्य समाज से बनता है। अतः समाज को बनाए रखना मनुष्य का दायित्व है। इस यज्ञ की बहुत बड़ी महिमा है। अतः इस विषय पर बहुत कुछ समझना और सीखना होगा। तीसरा यज्ञ जिसे पितृ यज्ञ कहा जाता है यह गृहस्थों के लिए बहुत आवश्यक है। आज प्रत्येक घर, नगर-नगर में जो फूट द्वेष की आग धधक रही है उसका विशेष कारण पितृयज्ञ को न समझना और न करना ही है। पितृयज्ञ में माता-पिता, आचार्य के साथ-साथ सभी गुरुजनों व पारिवारिक वृद्धजनों को शामिल किया गया है। विस्तार से इसको समझना होगा तुम्हें। इसके पश्चात् अतिथि यज्ञ आता है जिसकी वास्तविकता को हम लोगों ने भुला दिया है। आज भी हमारा देश अतिथि सेवा के लिए प्रशंसनीय माना जाता है किन्तु जो अतिथि-यज्ञ के अन्तर्गत भावनाएँ निहित हैं उनका अभाव हो गया है। हमें अच्छे उपदेशक अच्छे संन्यासी और अच्छे वानप्रस्थी क्यों नहीं मिल रहे, इसका एक कारण यदि कोई है तो अतिथि-यज्ञ की भावना का अभाव। यह अभाव सिर्फ यजमानों की ओर से ही हुआ हो यह बात नहीं। अतिथि बनने के जो अधिकारी थे उन्होंने भी अपनी लालसा, अहंकार और स्वार्थपरता से यजमानों की श्रद्धा भंग कर दी है। ईश्वर कृपा करे। देश में वही अतिथि-सेवा की भावना फिर आए। अन्तिम यज्ञ बलिवैश्वदेव यज्ञ है। जिसके अन्तर्गत पशु-पक्षी और दीन-हीन अनाथ जनता की सेवा का विधान है। तुमने पण्डितों से सुना होगा कि परमपिता परमात्मा यज्ञमय है। प्रभु की प्रत्येक रचना यज्ञ भावना से प्रेरित है। चूंकि मानव अपने कर्मों का कर्ता स्वयं है इसलिए मानव को यज्ञमय बनने के लिए अथवा अपने आपको बनाने के लिए दीक्षा और शिक्षा लेनी पड़ती है। मानव को भव सागर से तरने के लिए पंच महायज्ञों के अभ्यास को सीखना होगा और फिर तदनुरूप आचरण करना होगा। अतः तुम इस पुस्तक को आद्योपान्त समझने के लिए मेरे पास आश्रम में ठहरो।"

"स्वामी जी ! आपके पास ठहरूँगा और जब तक मुझे अपने कुछ बन पाने का विश्वास न हो जाय तब तक आपको कष्ट देता रहूँगा ।"

"बेटा ! अब तक जिन तीन पुस्तकों का मैंने परिचय दिया था वे पुस्तकें स्वयं को बनाने की थीं अब एक यह चौथी पुस्तक खोलकर देखो जो परिवार को बनाने की है । प्रत्येक माता-पिता अपने बच्चों को यशस्वी, मेधावी और सेवाव्रती देखना चाहता है । पर इससे भी आवश्यक है बच्चों को संस्कारित करना । बच्चे के जन्म से पूर्व ही उसको संस्कारित करने की योजना हमारे ऋषि-मुनियों ने रखी है । उन्हीं योजनाओं का यह अनुपम ग्रन्थ है संस्कार विधि । अच्छे संस्कारों के अभाव में बच्चे अपने जीवन में उद्योगपति, पंडित और नेता तो सम्भवतः बन जाएं पर यशस्वी, त्यागी और श्रीमान नहीं बन सकते ।' इस पुस्तक में १६ संस्कारों की उपयोगिता और विधि पर जो लिखा है वह खूब मन लगाकर समझो । परिवार को आर्य बनाने में अथवा आर्य समाज को पारिवारिक धर्म बनाने में यह पुस्तक विधान का काम देगी । इसी पुस्तक के अन्त के पृष्ठों में गृहाश्रम प्रकरणम् जो लिखा गया है उसकी एक-एक शिक्षा स्वर्ण अक्षरों में लिखी जानी योग्य है । सनातन धर्म पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है । अन्तिम सस्कार सभी करते हैं । सबको करना पड़ता है पर जो विधि और युक्ति हम में हैं उससे अधिक सार्थक और वैज्ञानिक कोई भी नहीं लिख सका ऐसा मेरा विश्वास है । अब एक और पुस्तक का परिचय मैं तुम्हें दूंगा । यह वह पुस्तक है जिसने समस्त विश्व के मतवादियों में हलचल पैदा कर दी है । इस ने लाखों को सन्मार्ग पर ला दिया है । स्वतन्त्रता की बलि वेदी पर शहीद होने वाले सैकड़ों युवकों ने इसी से प्रेरणा ली है । यह वह पुस्तक है जो लेखक की अमर कृति बन गई है शायद तुमने भी उस पुस्तक को पढ़ा होगा ।"

"पढ़ा है स्वामी जी ! महर्षि दयानन्द सरस्वती की अनुपम देन सत्यार्थ प्रकाश को मैं पढ़ चुका हूँ । इसके उत्तरार्द्ध को पढ़ने में बड़ा आनन्द आता है । पूर्वार्द्ध के १० समुल्लासों को सरसरी तौर पर पढ़ सका हूँ ।"

सत्यव्रत ! गलती यहीं से हुई और प्रायः सर्वत्र यही होती आ रही है । हम लोगों ने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम दश समुल्लासों पर ध्यान न देकर अन्तिम चार समुल्लासों में ही अधिक रुचि दिखलाई । इससे हुआ यह कि हमने अपने आप को न समझकर दूसरों के दोषों को देखना ही सीखा है । यम नियम की विशेषता बतलाते हुये महर्षि ने दोनों को जीवन में आवश्यक बतलाया है किन्तु यमों के बिना नियमों का पालन करना अधोगति को प्राप्त होने वाला कार्य उन्होंने लिखा है । ठीक ऐसी ही अवस्था सत्यार्थ प्रकाश के दोनों हिस्सों की है । पूर्वार्द्ध के बिना उत्तरार्द्ध अधूरा है । इसलिए मेरी यह राय है कि सत्यार्थ प्रकाश की पंक्ति-पंक्ति खूब ध्यानपूर्वक पढ़ो और समझो । यह ग्रन्थ हमारा प्रकाश-स्तम्भ है । जीवन के प्रत्येक पक्ष पर इसमें लिखा मिलेगा । गूढ़-से-गूढ आध्यात्मिक गुत्थियां सरलता से समझाने की और वर्ण आश्रम की उचित व्यवस्था बतलाने की और आचार-विचार व्यवहार को व्यावहारिक रूप में लाने की जो योजना इसमें है वह अन्य में एक साथ नहीं मिलेगी । पाखण्डों, अन्ध-विश्वासों से बचने के लिए उत्तम उपाय बताये गए हैं । इस ग्रन्थ की उपयोगिता का वर्णन मेरे सामर्थ्य से बाहर है । सिर्फ इतना कहकर कुछ दिन के लिए मैं तुमसे विदा लेना चाहूँगा । तुम आश्रम में टहरकर महर्षि के ग्रन्थों का मनन करो । जब तक दूसरे नगरों से लौटकर मैं न आऊँ, यहीं स्वाध्याय करते रहो । सत्यार्थ प्रकाश के पश्चात् और जो ग्रन्थ महर्षि के हैं अथवा वेद-शास्त्र आदि धर्मग्रन्थ हैं, उनका स्वाध्याय आर्य बन जाने के पश्चात् स्वतः आवश्यक हो जाएगा, क्योंकि

ऋषि ने वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनना आर्यों का परमधर्म बताया है। अतः उन ग्रन्थों का परिचय अभी आवश्यक नहीं। ईश्वर तुम्हारी इच्छा पूर्ण करे।"

"स्वामी जी! आप बाहर जा रहे हैं। मुझे यहां महर्षि के ग्रन्थों का स्वाध्याय करना है। आपने जिस कसौटी के विषय में बतलाया था कि उससे अपने कर्त्तव्यों को परखा जा सकता है। कृपया वह कसौटी अभी देते जाइए ताकि आपकी अनुपस्थिति में अपने को परखता रहूँ।"

तुमने ठीक याद दिलाया। वह कसौटी पास में रखना आवश्यक है। पर जो कसौटी इतनी आवश्यक हो वह किसी आर्य के पास न हो ऐसा भी नहीं हो सकता। तुम्हारे पास भी है, सिर्फ उसको पहचानने की देरी है। ऋषि के जिन ग्रन्थों को मैंने अभी दिया है वे ग्रन्थ जरा उलटा कर देखो और दत्तचित्त होकर मन, वचन, कर्म से मेरे साथ इस कसौटी रूपी आर्य समाज के दश नियमों का पाठ करो।

सत्यव्रत ने नियमों का पाठ किया और उसके समक्ष सत्य मार्ग प्रशस्त हो गया।

कर्म-तपस्या

कर्म भी एक तपस्या है। इसका तात्पर्य यह है कि अपनी कोई पसन्द न हो और जो करना हो उसे रुचिपूर्वक किया जाए। जो मानव पूर्णता प्राप्त करने का इच्छुक है, उसके लिए कोई कार्य छोटा अथवा बड़ा या महत्वपूर्ण अथवा साधारण नहीं होता। जिसके भीतर आत्म-प्रभुत्व और उन्नति की अभीप्सा है, उसके लिए सभी कार्य समान रूप से उपयोगी हैं। यह कहा जाता है कि मनुष्य केवल वही कार्य भली भाँति कर सकता है, जिसमें उसकी रुचि होती है। यह है तो सत्य, किन्तु इससे भी अधिक सच यह है कि प्रत्येक कार्य में, यहाँ तक कि नितांत तुच्छ प्रतीत होने वाले कार्य में भी वह रस ले सकता है। इस सफलता का रहस्य पूर्णता की तीव्र अभीप्सता में निहित है। जो भी कार्य या कर्त्तव्य तुम्हारे हिस्से में आए, उसे उन्नति के संकल्प सहित करो। तुम जो भी करो, अच्छे-अच्छे तरीके से करो। इतना ही नहीं, पूर्ण गम्भीरता के साथ पूर्णता की ओर उत्तरोत्तर बढ़ने के सतत प्रयास के साथ करो। इस प्रकार सभी काम, अति स्थूल साथ ही नितांत कलापूर्ण और बौद्धिक कार्य भी निर्विवाद रूप में नितांत रोचक बन जाएँगे। उन्नति का क्षेत्र असीम है और छोटी-से-छोटी वस्तु के लिए भी व्यक्ति एकाग्र हो सकता है।

—एक विचारक

—राजेन्द्रपाल

श्री सत्य साईं बाबा

आज सर्वत्र अशान्ति है। परिवार दुखी हैं। संसार दुखी है। व्यक्ति भ्रष्ट हो गया है और समष्टि पथभ्रष्ट है। पिता पुत्र की नहीं बनती। सास बहू के झगड़े हैं। राजनीति के झगड़े रगड़े तो हैं ही। कहीं दुष्काल है तो कहीं बाढ़ व बीमारी का प्रकोप। कंगाली के कारण कुछ संतप्त हैं तो कुछ खुशहाली के कारण दुर्व्यसनों का ग्रास बन रहे हैं। घूस भ्रष्टाचार से सारा समाज दूषित है। आचार-विचार आहार, संस्कार सब दूषित हो चुके हैं। पीड़ित दुखिया आत्मायें कहां जाएँ? किधर जाएँ?

भौतिक उन्नति से सब कुछ मिल जाता तो अमरीका आदि देशों में कोई समस्या न होती परन्तु वहाँ के युवक युवतियाँ भी तो अशान्ति के कारण भारत के वनों में भटक रहे हैं। निद्रा लाने के लिए गोलियों का अमरीकन नागरिक पुष्कल प्रयोग करते हैं। सोचना चाहिए कि हम इस दूषित वातावरण में क्या करें? मानवता की छाती पर आज दानवता दनदना रही है। इस का उपचार निदान कुछ तो होना चाहिए।

बड़े सौभाग्य की बात है कि ऐसी विषम वेला में एक आत्मा ने मानव के ताप हरने के लिए अपने दिव्य दर्शन दिए हैं। बताने की आवश्यकता नहीं कि यह आत्मा श्री सत्य साईं बाबा ही हैं। आज देश भर में, विशेषकर दिल्ली से पश्चिम के प्रदेशों में तो बाबा का नाम घर घर में पहुँच रहा है। छोटे बड़े, शिक्षित अशिक्षित —यहाँ तक कि संसद सदस्य, पूर्व संसद सदस्य, प्रदेशों एवं केन्द्र के मन्त्री भी बाबा के दर्शन करके अपने को आज धन्य धन्य मानते हैं।

सर्वसाधारण में भी आज यही चर्चा है कि बाबा 'करनी वाला' व 'पहुँचा हुआ बाबा' है, बाबा कई शक्तिवाला है, तभी तो इतने बड़े-बड़े लोग उसके अनुयायी हैं और उसके दर्शनों के लिए तड़पते तरसते हैं। दैनिक पत्रों में बाबा के चमत्कारों की चर्चा चलती रहती है। कई नेताओं ने भी इस विषय में कुछ लेख लिखे हैं।

बाबा चमत्कारी बाबा है। कोई ऐसा वैसा तो है नहीं। बाबा की दिव्य शक्तियों का परिचय पाकर भी जो बाबा की चरण शरण में नहीं आएगा वह घोर दुःख को पाएगा। उस जैसा अभागा अथवा मन्दभागी और कौन होगा? सूर्य का प्रचण्ड प्रकाश धरती पर पड़ रहा है फिर भी कोई अंधेरे में ही रहे तो दोष सूर्य का नहीं, उस व्यक्ति का है जो सूर्य के तेज से अपने को दूर रखने का प्रयास कर रहा है।

पूर्व काल में और आज के युग में एक भेद है और यह भेद कोई साधारण नहीं। श्री राम, श्री कृष्ण, गौतम व कणाद आए। बुद्ध आए, भक्त कबीर, बाबा नानक, सन्त तुकाराम आए। इस पिछली शताब्दी में राममोहन राय, दयानन्द, विवेकानन्द आदि महापुरुष आए परन्तु उन सब महापुरुषों को जनता से सम्पर्क जोड़ने में एक बड़ी कठिनाई थी यातायात के साधनों की व प्रेम की। तब आने जाने के

साधन इतने विकसित न थे, न ही इस प्रकार के दैनिक समाचार पत्र जो उन महापुरुषों की गतिविधियों को व्यापक रूप से प्रचारित कर सकें। अतः अधिकांश जनता यदि उनके सन्देश को न सुन सकी तो कुछ समझ में भी आता है परन्तु आज के वैज्ञानिक युग में यदि कोई पत्र पत्रिकाओं व पुस्तकों में पढ़ सुनकर भी बाबा के निकट नहीं आता तो वह बड़ा दोषी समझा जाएगा। अतः बुद्धिमत्ता इसी में है कि क्षण भी नष्ट न किया जाए। क्षणभगुर जीवन का सुधार करने व अपना बेड़ा पार करने में बिलम्ब करने वाला कभी भी अकलमन्द नहीं कहा जा सकता। कल पर सुधार का प्रोग्राम छोड़ने वाला तो अकलबन्द है।

१. बाबा के चमत्कार सर्वविदित हैं। स्पष्ट है कोई भी साक्षात कर सकता है। क्या आपने समाचार पत्रों मे नहीं पढ़ा कि बाबा दूसरों के हाथ को जब अपने हाथ में लेते हैं तो बाबा के पवित्र हाथों से भभूती गिरने लगती है। कई बड़े २ व्यक्तियों ने अपना हाथ बाबा के हाथों में देकर बाबा की राख लेकर अपने को धन्य २ माना है। प्रत्यक्षदर्शी कहते हैं कि बाबा के हाथों में कुछ भी नहीं होता। न जाने किस अलौकिक दिव्य शक्ति से कहाँ से बाबा भभूत ले आते हैं।

२. बड़े बड़े विख्यात नेताओं ने बाबा के इस दैवी चमत्कार को देखा है और इस राख को चाटा है। कई बार तो ऐसा भी हुआ है कि जिस के हाथों पर ईश्वरीय राख गिरी वह तो अभी इसे चाट भी नहीं पाया कि दर्शकों की भारी भीड़ उस भक्त के हाथ को चूमने चाटने के लिए टूट पड़ती है। गत दिनों श्री ला० जगत् नारायण पूर्व संसद सदस्य के हाथ को चाटने के लिए जन समुद्र उमड़ पड़ा।

३. यह अब किसको ज्ञात नहीं कि बाबा ने इसी राख से असख्यों रोगियों को रोग मुक्त कर दिया है। रोग का जाते पता नहीं लगता। श्री क० मा० मुन्शी ने भी एक लेख में यह बात लिखी थी। यह कितना बड़ा उपकार है। दुखी मानवों की सेवा सच्ची ईश्वरोपासना है। त्रासित व्यथित आत्माओं की आज एक ही आस है और वह है सत्य साईं बाबा।

४. यहीं पर बस नहीं बाबा की शक्ति अब विराट रूप धारण कर रही है। अबोहर फाजिल्का में ऐसी अनेक घटनाएँ देखने व सुनने मे आई हैं कि कई भक्तों ने अपने इष्ट देव पूजनीय श्री सत्य साईं बाबा के चित्र को अपने घरों की शोभा बनाया तो बाबा के चित्रों से भभूती गिरने लगी। अनेक व्यक्तियों ने बाबा का साक्षात तो नहीं किया परन्तु बाबा जी ने ऐसी प्यासी आत्माओं को भी अपने चित्रों से राख देकर आनन्दित कर दिया है।

५. और अब पता चला है कि फाजिल्का में एक बच्ची स्कूल गई तो उसके एक हाथ की हथेली से धुआं निकलने लगा। अध्यापिकाएँ चकित रह गईं। यह निराली बात उनकी समझ में न आई। उस बच्ची को घबराहट में घर भेजा गया। शीघ्र सबको ज्ञात हो गया कि बालिका में भी बाबा की दैवी शक्ति का प्रवेश हो गया है। उसके हाथ पर भभूती देखी गई और जन २ को भभूती से ही विदित हुआ कि इसमें बाबा की दिव्य शक्ति समा रही है। सत्या साईं बाबा ने अपने भक्तों को उनकी सच्ची भक्ति का यह फल या वर दिया लगता है।

भक्तजनों की ये सब बातें यदि सत्य हैं तथ्य हैं तो तनिक आइए सब मिलकर इन पर विचार करें। कुछ शङ्कायें हैं जो उत्तर मांगती हैं।

१. चमत्कार से श्री सत्य साईं बाबा क्या अभिप्राय है? क्या चमत्कार सृष्टि-नियम विरुद्ध होता है? यह कैसे हो सकता है? "The occurence of an

unnatural phenomenon is a contradiction in terms. If it occurs, it is natual, if it is natural it must occur. Then is it anti natural ?" No. who can defy naturc successfully ?

कहा जाता है कि चमत्कार श्रद्धालु, भक्तों को ही दीखते हैं। तो क्या विवेकशील व्यक्ति को यह अधिकार नहीं कि वह यह जाँच कर सके कि "it is not a fraud of fraudulent persons" बाबा यदि बिना बोले सर्वत्र चमत्कार ही दिखाते जाएँ तो संसार के झगड़े मिट जाएँ। सारा विश्व उनका अनुयायी बन जाए।

२. बाबा ने कुरुक्षेत्र में गीता की महिमा के विषय में बहुत कुछ कहा परन्तु गीता का मत है कि अभाव से भाव उत्पन्न नहीं हो सकता। यही वैज्ञानिक सत्य है, फिर बाबा की भभूती कहाँ से आती है ? यह तो बाबा के भी मत के विरुद्ध बात है। क्या यह अंध श्रद्धा वालों की उड़ाई गप्प तो नहीं ? भूत प्रेत भी तो सबको दिखाई नहीं देते। वे भी तो मानसिक रोगियों को डराते सताते हैं।

३. बाबा राख से रोग मुक्त कर देते हैं तो लाखों कोढ़ियों अंधों पर राख फैंकें। युद्ध में घायल जवानों को हाथ दें, आखें दें, टाँगें दे तो कितने दुःखी परिवार उल्लसित हो जाएँ। शोकाकुल परिवारों को दीवाली आ जाए। संसार से रोग भाग जाए। करोड़ों रुपये औषधियों पर हस्पतालों में व्यय होते हैं, ये धन बच जाए। हमारा देश कंगाली के जबड़ों से निकल जाए। गरीबी हटाओ नारा न रहकर बाबा की कृपा से वास्तविकता बन जाए। संसार मान जाए कि बाबा जगत् गुरु हैं। क्या बाबा को कोढ़ियों पर, पीड़ित रोगियों पर दया नहीं आती ? कम से कम बाबा विश्व के उन मूक शिशुओं पर तो करुणा की दृष्टि से देखें, वे शिशु जो हस्पतालों में बिलख रहे हैं। केवल भक्तों के सिरों पर राख फैंकने से विश्व का क्या सुधार हो सकता है ? अनैतिकता व घूस तो यहाँ यथा पूर्व घुसे हुए हैं।

४. चित्रों से राख अब गिर रही है। यह बात भी बड़ी रोचक है परन्तु किसने देखी ? मधु चित्रों से निकल रहा है। बड़ी अच्छी बात है परन्तु स्मरण रखें कि जादूगर रुपये बना तो सकता है पर केवल दिखाने के लिए। पेट पालने के लिए तो वह तमाशा करके सरकार मुद्रा की भिक्षा के लिए झोली फैलाया करता है। बाबा जी से कहें कि अपने हाथों से व चित्रों से राख की बजाए धन धान्य वर्षाएँ ताकि बंगला देश के भूखे मौत के मुख से बच जाएँ। देश ता बंगला देश Refugee Ticket के बोझ से दब गया ताकि बंगला देश वासी बचाए जा सकें और बाबा जी भक्तों के सिरों पर राख ही फैंकते रह गये।

यदि मधु चित्रों से निकलता है तो बाजार में मधु अब भी क्यों पुराने भाव बिक रहा है। बाबा जी मधु के कनस्तरों के न सही बोतलों के ढेर लगा दें। विश्व उनके चरण पकड़ लेगा।

५. फाजिलका में एक कन्या के हाथ से धुएँ की बात भी अच्छी कही। क्यों न यह आग फाजिलका से चार पाँच मील परे पाकिस्तानी दानव सैनिकों की छावनियों में लगी ? बाबा राक्षसों को क्यों नहीं जलाते। एक श्रद्धालु बालिका के हाथ में धुआँ पैदा करने से उसका व देश का क्या बना ?

बस हम इन प्रश्नों का उत्तर चाहते हैं। पुनः हम कहेंगे कि यदि अभाव से राख बाबा पैदा कर सकते हैं तो बाबा अपनी दिव्य शक्ति से तोपों के वे रूसी गोले जो अभी युद्ध में प्रयुक्त हुए, अपने भक्तों के घरों पर फैंकें ताकि भारत का करोड़ों रुपया विदेश में जाए। भारत शत्रु से विदेशी सहायता के बिना भली

भाँति निपट सके।

रजनीश जी को समाचार पत्रों ने बड़ा बनाया तो उन्होंने भक्तों को Sex Meditation (लिंग योग) सिखाया। हमने Illustrated Weekly of India में ये गन्दे चित्र देखे। महेश को योगी व महर्षि बनाया तो वह भी थोथा अमरीकन रंगीला बाब निकला।

हम चाहते हैं कि बाबा जी शास्त्रोक्त सत्य बातें ही कहें ताकि उनके द्वारा विश्व क हित हो। पाखण्ड किसी के भी नाम पर चले, पाखण्ड ही है। गाड़ी में मुझे एक विज्ञापन द्वारा शुभ सूचना दी गई कि तिरुपति में भगवान् ने सर्प के रूप में अवतार ले लिया है। सर्प ब्राह्मण बनकर पुजारियों से बोला, "डरो मत।"

अनायास मुख से निकला, धिक्कार है इस पोप लीला पर कि पिता के जन्म की शुभ सूचना पुत्र दे रहे हैं। यह क्या गोरख धंधा है ?

आज योगेश्वर नामधारी कई थोथेश्वर लोगों को बुद्धू बना रहे है। जनता को एक ईश्वर की उपासना के लिए पवित्र ओ३म् नाम का जाप करना चाहिए। शुभ कर्म करने चाहिएं। ★

खाने का लाभ

महात्मा आनन्द स्वामी

एक था किंगकांग। मैं था कश्मीर में। वह भी वहीं था। मैंने अपनी कथा में एक दिन कहा कि मनुष्य को थोड़ा खाना चाहिए। थोड़ा खाकर उसे पचाकर शरीर में परिवर्तित करके उससे कार्य लेना चाहिये। कथा समाप्त हुई तो एक युवक ने मेरे पास आकर कहा—'स्वामी जी ! आप तो थोड़ा खाने के लिए कहते हैं, परन्तु उस किंगकांग को देखिए, वह तो बहुत खाता है। मैंने पूछा—"क्या खाता है ?"

उस युवक ने बताया कि प्रातःकाल वह वह दो बड़ी डबल रोटी के टोस्ट खाता है। इनके ऊपर एक बाल्टी चाय पीता है। तब एक दर्जन अण्डे और एक पाव मक्खन खाता है।

मैंने कहा—'हे मेरे भगवान ! यह व्यक्ति क्या अब तक जीवित है ?' वह युवक बोला—

"जीवित क्यों नहीं ! और फिर यह तो अभी प्रातःकाल हुआ। इसके बाद दोपहर को भी खाता है, शाम को भी, रात को भी। दोपहर के भोजन में दो मुर्गे तो केवल चटनी के रूप में खाता है।'

मैंने पूछा—इतना खाकर वह करता क्या है ?

उसने कहा—'दूसरों को नीचे गिराता है।'

मैंने कहा—"बस गिराता ही है न, उठाता तो नहीं किसी को ?"

जिस भोजन से दूसरों को गिराने की शक्ति मिले, वह तो ठीक नहीं। उसका कोई लाभ नहीं। जो दूसरों को गिराता है, वह स्वयं भी गिरता है। ●

आज कल के आदमी —[कल्पित कथा]

यह सारी सृष्टि भगवान् की बनायी हुई है। पहाड़-पत्थर, नदी-समुद्र सब कुछ उन्होंने ही बनाया है।

लेकिन धरती और समुद्र, मिट्टी और बालू, पहाड़ और पत्थर बनाने का काम स्थायी काम था। एक बार हो गया सो हो गया। सबसे मुश्किल काम है जीव-जन्तुओं को बनाना। वह काम हमेशा चलता रहता है। भगवान् जी बिल्ली और चूहा, शेर और मेमना, सभी जीवों का निर्माण करते हैं। उसके बाद बिल्ली चूहे को खा जाती है और शेर मेमने को चट कर जाता है। इस तरह काम और भी बढ़ता है। सन्तुलन किसी तरह भी दुरुस्त नहीं हो पाता। फिर आदमियों के बनाने का काम है सो और भी आफत है। संसार की जनसंख्या बढ़ती जाती है और आदमी बनाने का काम भी बढ़ता जाता है। भगवान्‌जी दिन-रात आदमी बनाने के पीछे ही परेशान रहते हैं, हर तरह का आदमी बनाते हैं और उसे संसार में चालान कर देते हैं।

एक दिन सवेरे भगवान् जब आदमी बनाने बैठा तो देखते हैं कि जिस मिट्टी से वे आदमी बनाने थे वह मिट्टी ही घट गयी है। अब क्या करें? पार्षदों को बुलाया। कहने लगे, "यह तुम लोग क्या करते हो? आदमी लगातार बढ़ते जाते हैं और आदमी बनाने वाली मिट्टी का पता ही नहीं। इतनी सारी मिट्टी पड़ी हुई थी वह क्या हो गयी?"

पार्षदों ने सिर नवाकर जवाब दिया, "इस शताब्दी के आरम्भ से इतने अधिक आदमियों का निर्माण हुआ कि वह मिट्टी बिल्कुल घट गयी।"

"अब क्या हो?" भगवान्‌जी आप ही आप बोलते हुए सोचने लगे, "आज-कल आदमियों की बड़ी माँग है। हर जगह हर देश में आदमी चाहिएं। उन लोगों ने महामारियों को टाल दिया है, तरह-तरह की दवाइयाँ निकाली हैं, इतने-इतने आदमियों की माँग और मिट्टी बिल्कुल नदारद। अब क्या हो?"

"मगर कोई उपाय तो करना ही होगा," भगवानजी ने कहा।

फिर करना क्या था। वह मिट्टी तो थी नहीं। नकली मिट्टी का इन्तजाम किया गया। जिस तरह नकली मधु और नकली घी हैं, उसी तरह की नकली मिट्टी बनी और उसी मिट्टी से भगवान् आदमियों का निर्माण करने लगे।

आजकल जो आदमी आ रहे हैं वे उसी नकली मिट्टी से बने हुए आ रहे हैं। न उनके स्वास्थ्य का ठिकाना और न उनकी बात का ठिकाना। कहेंगे कुछ, करेंगे कुछ। ऐसे आदमी भी जब शोर मचाते हुए नीति और सिद्धांत, सदाचार की बातें करने लगते हैं तो भगवान् जी के होठों पर मुस्कराहट आ जाती है। ★

वेद-भाष्य का मूल्य ३१ अक्टूबर से १५१) होगया है।

जन-ज्ञान के जो सदस्य अभी तक भी वेद-भाष्य के सदस्य नहीं बने हैं उनके लिए विशेष रियायत : वे १२४) भेजकर वेद भाष्य के सदस्य बन सकते हैं। जन-ज्ञान के प्रत्येक परिवार में वेद भाष्य होना ही चाहिए। —सम्पादक

क्या आप अपने परिवार में प्रभु की अमर वाणी वेद नहीं लाएंगे ?

सार्वदेशिक सभा के अधिकारी अपनी अक्षम्य भूल सुधारें

पिछले अंक में हमने सभा द्वारा प्रकाशित ग्रंथ "सायर्ण तथा दयानन्द के वेद भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन" को त्रुटियों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए आग्रह किया था कि अविलंब इस ग्रन्थ को रद्द किया जाए ! इस सम्बन्ध में सभा के प्रधान जी को रजिस्टर्ड पत्र लिखकर भी उनसे अविलंब पुस्तक रद्द करने की प्रार्थना की थी।

दुर्भाग्यवश सभा के अधिकारियों ने इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझी। किसी भी महापुरुष के अनुयायी अपने गुरुदेव का अपमान किसी के भी द्वारा सहन करना स्वीकार नहीं करते। यह और भी विचित्र है कि यह निन्दनीय अपराध उस संगठन द्वारा हुआ हो जिस पर भूमंडल में ऋषि दयानन्द की गौरव रक्षा का भार है।

हम सार्वदेशिक सभा के अधिकारी सदस्यों से यह सानुरोध विनम्र निवेदन करना चाहते हैं कि वे जनता की भावनाओं का सम्मान करते हुए उक्त ग्रंथ को तुरन्त रद्द कर अपनी भूल का परिमार्जन करें। यह कार्य जितना शीघ्र हो उतना ही श्रेयस्कर है।

आर्य समाज शताब्दी के नाम पर प्राप्त धन से ऐसे ग्रंथ का प्रकाशन कर जो भूल हुयी है, उसे और अधिक देर तक सहन करना आर्य जनता को स्वीकार न होगा। अभी तो हमने शताब्दी पर प्रकाशित एक ही ग्रन्थ रत्न (?) के दर्शन किए हैं। क्या शताब्दी के धन से ऐसे ही ग्रंथ तो और भी नहीं छप रहे ? प्रभु ही जानें।

आर्यसमाज के सभी विद्वान् एक स्वर से इस पुस्तक का विरोध कर रहे हैं। अनेक उच्च कोटि के विद्वानों के पत्र इस संबंध में हमें प्राप्त हो चुके हैं। अतः जन मानस की भावनाओं का मान करते हुए गुरुदेव देव दयानन्द के प्रति अपमानजनक उक्त ग्रन्थ को तुरन्त रद्द करने को माँग सार्वदेशिक सभा के अधिकारी स्वीकार करें। यह हमारी विनम्र करबद्ध प्रार्थना है—अगले पृष्ठों में इसी निन्दनीय ग्रंथ के संबंध में आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध लेखक आचार्य जगदीश विद्यार्थी का लेख पढ़िए।

राकेश रानी
संपादक

महर्षि दयानन्द का घोर अपमान

(लेखक : आचार्य जगदीश विद्यार्थी, एम० ए०)

कुछ दिन हुए 'सायण तथा दयानन्द के वेदभाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन' ग्रन्थ हमारे दृष्टि पथ में आया। इस ग्रन्थ की लेखिका हैं—सुश्री डा० विमला। ग्रन्थ का प्रकाशन 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली द्वारा हुआ है।

हमने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक पुस्तक का आद्योपान्त पारायण किया। पुस्तक पढ़ने पर जो बहुमूल्य मोती (?) हमें प्राप्त हुए उन्हें पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं—

१. दयानन्द की भाष्यकारिता में सायण का भाष्य सबसे अधिक सहायक था।

—पृष्ठ २६०

२. मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि दयानन्द के भाष्य में भौतिक और वैज्ञानिक अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाये हैं। वे यत्र-तत्र विमान, रथ आदि निर्माण-योग्य यन्त्रों एवं सूर्य-चन्द्र आदि प्राकृतिक तत्त्वों का संकेत मात्र करते हैं। जबकि उन्हें इन विषयों की विशद् व्याख्या करनी चाहिए थी। सम्भवतः इस न्यूनता का कारण दयानन्द का भौतिक और वैज्ञानिक ज्ञान का अभाव या उपेक्षा ही होगा। वे वैज्ञानिक न थे, इसलिए भी वे अपने भाष्य में भौतिक और वैज्ञानिक अर्थ की विशद् व्याख्या नहीं कर सके।

—पृष्ठ २६०

३. सायण के समय में जिस प्रकार के भाष्य की आवश्यकता थी, उन्होंने ठीक वसा ही भाष्य किया।

—पृष्ठ २६१

४. उनके भाष्य में सभी तथ्यों का पूर्णतः प्रकाशन हुआ हो, यह नहीं कहा जा सकता।

—पृष्ठ २६१

समीक्षा—१. लेखिका ने अपने ग्रन्थ में पृष्ठ ९९ से २५१ तक विविध दृष्टि-कोणों से आचार्य सायण और महर्षि दयानन्द के भाष्यों की तुलना की है। जितने मन्त्र उद्धृत किये गये हैं उनमें एक आध शब्द को छोड़कर महर्षि दयानन्द के अर्थ आचार्य सायण से सर्वथा विपरीत हैं। सायण ने ऐतिहासिक एवं रूढ़ अर्थ किये हैं और दयानन्द ने आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक। अतः यह कहना कि—'दयानन्द की भाष्यकारिता में सायण का भाष्य सबसे अधिक सहायक था'—लेखिका के अज्ञान, हठधर्मी, दुराग्रह और पक्षपात को सूचित करता है।

२. महर्षि दयानन्द भौतिक या वैज्ञानिक ज्ञान मे अनभिज्ञ थे—यह कहना भी अपनी अज्ञानता का ही परिचय देना है। महर्षि दयानन्द 'साक्षात्कृत धर्मः थे। वे समाधिस्थ होकर वेदमन्त्रों के अर्थों का दर्शन करते थे। पूना में प्रवचन देते हुए उन्होंने घोषणापूर्वक यह कहा था कि मैं विमान का निर्माण कर सकता हूँ। विशद व्याख्या न करने का कारण भौतिक या वैज्ञानिक ज्ञान का अभाव नहीं था अपितु समय और साधनों का अभाव था।

३. सायण ने अपने भाष्य में गर्भिणी गौ के मारने का विधान लिखा है। पशुओं को काटकर यज्ञ में बलि देने की चर्चा की है। अनेक स्थानों पर अश्लीलता की पराकाष्ठा भी कर दी है। मन्त्रों में ऋषियों और राजाओं का इतिहास भी ढूंढ़ निकाला है—तो क्या सायण के युग में ऐसे ही वेद-भाष्य की आवश्यकता थी ? क्या वेद का जो जी में आये वही अर्थ किया जा सकता है ? फिर तो वेद चूं चूं का मुरब्बा हो गए या मोम की नाक हो गई चाहे जिधर मोड़ लो। सायण ने जो भाष्य किया वह वेद से सर्वथा विरुद्ध किया है। इतना ही नहीं अपनी भूमिका में दी हुई मान्यताओं के भी विरुद्ध ही अर्थ उन्होंने किया है।

४. महर्षि दयानन्द ने अपने भाष्य में कौन से तथ्यों का प्रकाशन नहीं किया है ? उन्होने अपने भाष्य में यत्र-तत्र आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, वैज्ञानिक, अर्थ शास्त्र, धर्म शास्त्र, समाज शास्त्र, राजनीतिक शास्त्र नाना प्रकार के अर्थों का प्रकाशन किया है।

यास्क पर भी कुठाराघात

लेखिका आचार्य यास्क के सम्बन्ध में लिखते हैं—

वैसे यास्क ने सभी बातें क्रमबद्ध कहीं हैं किन्तु फिर भी उनमें एक त्रुटि दृष्टिगत होती है कि उन्होंने कुछेक बातों को स्पष्ट नहीं लिखा। आख्यान, कथा, इतिहास, ऋषि आदि का पूण विवेचन न करके उन्होंने उनका संकेत मात्र किया है।

—पृष्ठ २५६

इसी प्रकार ऋषि सम्बन्धी विचार भी भ्रमपूर्ण हैं। 'ऋषि कुत्सो भवति कर्ता-स्तोमानाम् इत्यौपमन्यवः' ऋषि कुत्स होता है। वह मन्त्रों का कर्ता है। ऐसा औपमन्यव आचार्य का मत है। 'कर्तास्तोमानाम्' पद से स्पष्ट होता है कि मन्त्रों के बनाने वाले ऋषि हैं। यास्क एक अन्य स्थल पर औपमन्यव का मत लिखते हैं—ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्शेत्यौपमन्यवः।" अर्थात् ऋषि दृष्टा होने से उन्होंने मन्त्रों को देखा, ऐसा औपमन्यव आचार्य का मत है। इस प्रकार एक हो बात को दो प्रकारों[१] से लिखने के कारण एक निष्कर्ष पर पहुँचना दुष्कर हो जाता है।" —पृष्ठ २५६

समीक्षा—महर्षि यास्क ने अपना ग्रन्थ छोटे बच्चे-बच्चियों के लिए नहीं लिखा था। उन्होंने तो यह ग्रन्थ उन व्यक्तियों के लिए लिखा था जिन्हें वेदों के सम्बन्ध में कुछ पूर्व जानकारी हो। इसलिए कहीं व्याख्या कर दी और कहीं संकेत दे दिए जिससे अध्येता अपनी बुद्धि का भी प्रयोग कर सके।

महर्षि यास्क के ऋषि सम्बन्धी विचार भ्रमपूर्ण नहीं हैं। हाँ, लेखिका को मतिभ्रम अवश्य हुआ है। हम लेखिका के शब्दों में उनका भ्रमभञ्जन करते हैं—

"ऊपर मन्त्र द्रष्टा ऋषियों के लिए 'दृश' धातु का प्रयोग देखने में आया है। किन्तु हम पहले देख चुके हैं कि कुछ ग्रन्थों में 'कृञ्' धातु का भी प्रयोग हुआ है। अतः सम्भव है कि सायण ने उसी के आधार पर ऋषियों को मन्त्रकर्ता मानकर

१. 'दो प्रकार' पाठ चाहिए। प्रकारों अशुद्ध है। 'विद्यार्थी'

मन्त्र के मध्य ऐतिहासिक ऋषियों का वर्णन किया हो। किन्तु यह ध्यान देने योग्य बात है कि 'कृत्र्' धातु का अर्थ केवल कर्ता ही नहीं अपितु दृष्टा भी होता है।[1] भाष्य का पातञ्जलि 'भूवादयो धानव: सूत्र की व्याख्या में 'अनेकार्था अपि धातनो भवन्ति' अर्थात् धातु अनेकार्थक होते हैं, लिखा है।[2] उन्होंने 'कृञ्' धातु के अनेक अर्थ प्रदर्शित किए हैं। श्रौतसूत्र[2] में कर्काचार्य ने लिखा है—"मन्त्रकर्ता मन्त्रद्रष्टा कहे जाते हैं। मन्त्रों का करना सम्भव नहीं क्योंकि इससे[3] वेद अनित्य हो जाएगा, अत: 'कृञ्' धातु दर्शनार्थ में प्रयुक्त होता है।" —पृष्ठ २१८

इस प्रकार दो प्रकार से लिखने पर भी निष्कर्ष एक ही है। आशा है अपने ही वक्तव्य को पढ़कर देवीजी का भ्रमभञ्जन हो गया होगा।

हिमालय जैसा महान् झूठ

लेखिका ने पृ० १३८ पर ऋग्वेद का 'युवं नरा स्तुवते पज्रियाय'...... मन्त्र उद्धृत किया है। सायण और दयानन्द के अर्थों की तुलना करते हुए आपने लिखा है—

"पज्रियाय' पद सायण के मत में "अंगिरस कुल में उत्पन्न ऋषि" है, दयानन्द ने उक्त पद का अर्थ स्पष्ट नहीं किया है।[4] कारोतरो पद[5] का अर्थ सायण ने धर्मवेष्टित सुरा-पात्र लिखा है। दयानन्द का अर्थ स्पष्ट नहीं है। —पृष्ठ १३८

समीक्षा—महर्षि दयानन्द ने अपने वेद-भाष्य में पज्रियाय का अर्थ इस प्रकार किया है—(पज्रियाय) पद्रेषु, पद्रेषु पदेषु भवाय। अत्र पदधानो रौणादिकोरक् वर्णव्यत्ययेन दस्य जः। ततो भवार्थे घः। आर्यभाषा में ऋषि ने अर्थ किया है (पज्रियाय) पदों में प्रसिद्ध होने वाले।

[6]'कारोतरात्' पद का अर्थ महर्षि ने इस प्रकार किया है—(कारोतरात्)कारान् व्यवहारान् कुर्वत: शिल्पिन उ इति वितर्के तरति येन। आर्यभाषा में वे लिखते हैं—(कारोतरात्) जिससे व्यवहारों को करते हुए शिल्पी लोग तर्क के साथ पार होते हैं।

इन अर्थों में क्या स्पष्ट नहीं है। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि ये ऊल-जलूल विचार भंग की तरंग में लिखे गये हैं। आचार्य यास्क के शब्दों में मैं इतना ही कह सकता हूँ—'नैष: स्थाणोऽपराधो यदेनमन्धो न पश्यति।' यदि अन्धा खम्भे से ठोकर खाकर गिर पड़े तो उसमें खम्भे का अपराध नहीं है। महर्षि ने तो अर्थ स्पष्ट कर दिया है आपकी समझ में न आये तो आपका दोष है महर्षि का नहीं।

लेखिका ने ऐसे ही निरर्थक विचार अन्य स्थलों पर भी प्रकट किए हैं—

१. महर्षि दयानन्द के द्वारा किया गया इस मन्त्र का अर्थ सर्वांशत: स्पष्ट नहीं है। —पृष्ठ १३६

२. मन्त्रार्थ में सभी शब्दों का तात्पर्य स्पष्ट न होने के कारण मन्त्र का वर्ण्य विषय बोधगम्य नहीं है। —पृ० १३८

३. दयानन्द का पदार्थ स्पष्ट नहीं है। —पृ० १३९

४. इन्होंने (दयानन्द ने) मन्त्र का जो पदार्थ दिया उससे कोई तात्पर्य स्पष्ट नहीं होता। —पृ० १४१

---

१. यह वाक्य पुस्तक के अनुसार लिखा है। २. 'श्रौतसूत्र' चाहिए ३. 'इससे' चाहिए ४. वाक्य रचना भ्रष्ट है। ५. वेद में 'कारोतरो' पद नहीं है। ६. 'कारोतरात्' पद है।

५. परन्तु पदार्थ स्पष्ट नहीं है। —पृ० १४३

६. मन्त्र का पदार्थ स्पष्ट नहीं है अतः मन्त्र का वर्ण्य विषय भाष्य में स्पष्ट नहीं है। —पृ० १४८

इस प्रकार के अन्य भी अनेक स्थल पुस्तक में हैं। महर्षि दयानन्द का पदार्थ सर्वत्र स्पष्ट है लेखिका न समझ सके तो उसका अज्ञान है। महर्षि दयानन्द के भाष्य की एक शैली है। उस शैली के अनुसार महर्षि ने पदपाठ के पश्चात् प्रत्येक मन्त्र का पदार्थ दिया है। पदार्थ में वेद के पदों का क्रमशः अर्थ किया है। पदार्थ का अर्थ महर्षि ने अन्वय करके (prose order) में नहीं किया है। अन्वय तो आगे किया है। देवीजी पदार्थ में ही अन्वय सहित अर्थ ढूँढ रही हैं इसी कारण उन्हें भ्रान्ति हुई है, परन्तु अपनी अज्ञानता को वे महर्षि दयानन्द पर थोप रही हैं। महर्षि के अर्थ की गहराइयों को समझने के लिए किसी गुरु के चरणों में बैठें।

एक नई खोज

लेखिका ने लिखा है—

"स्वामी दयानन्द ने सम्पूर्ण यजुर्वेद और ऋग्वेद के ७ मण्डल, ६१वें सूक्त तक का भाष्य किया है।" —पृ० २५

आगे चलकर आचार्य सायण और महर्षि दयानन्द के भाष्य की तुलना करते हुए देवीजी ने पृ० २२३ से २३८ तक ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के ७।६३ से लेकर ७।९७ सूक्त तक तुलना की है। देवी जी ने जिन मन्त्रों को उद्धृत किया है उन पर आचार्य सायण और महर्षि दयानन्द दोनों के ही भाष्य दिए हैं।

हम यह जानना और पूछना चाहते हैं कि जब महर्षि दयानन्द ने स्वयं लेखिका के अनुसार ७ मण्डल, ६१वें सूक्त तक (वस्तुतः ६१वें सूक्त के दूसरे मन्त्र तक) ही भाष्य किया है तब महर्षि दयानन्द का आगे का भाष्य आपको कहाँ से उपलब्ध हुआ।

हमने महर्षि दयानन्द के सभी ग्रंथों का आलोचन और मन्थन किया है। एक ग्रन्थ को कई-कई बार पढ़ा ; परन्तु हमारी दृष्टि में कहीं भी महर्षि दयानन्द का भाष्य ७।६१ के दूसरे मन्त्र से आगे प्राप्त नहीं हुआ। अजमेर में जहाँ महर्षि दयानन्द के सभी हस्त लेख विद्यमान हैं, वहाँ भी यह भाष्य उपलब्ध नहीं है। देवीजी को यह भाष्य कहाँ से मिला। महर्षि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित प्रामाणिक भाष्य यदि देवीजी हमें दिखला दें तो हम उन्हें अपनी ओर से १०,००० रुपये पारितोषिक प्रदान करेंगे। पुस्तक के प्रकाशक सार्वदेशिक सभा के अधिकारी भी उक्त भाष्य दिखाने पर इस पारितोषिक के अधिकारी होंगे।

यहाँ हम डिण्डिम घोष के साथ इतना और कह देना चाहते हैं कि देवीजी ने ७।६१ से आगे मन्त्रों के जो अर्थ दिए हैं वे महर्षि दयानन्द के नहीं हो सकते। देवी जी सायण और दयानन्द के भाष्यों की तुलना करते हुए एक स्थल पर लिखती हैं—

दयानन्द ने उक्त ऋचा की व्याख्या की है ……हम लोगों की समग्र शत्रुओं को विनष्ट करें। —पृ० २३६

ऐसी भ्रष्ट भाषा महर्षि दयानन्द नहीं लिख सकते। यह तो लेखिका का ही अज्ञान है। हम लेखिका के ऐसे अन्य प्रयोग पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं।

"इसकी स्पष्टीकरण वे इन शब्दों में करते हैं।" —पृ० २३१

"दयानन्द के अनुसार यह यज्ञ ईश्वर से सम्बन्ध है।" —पृ० २३३

"इत्यादि बातों की जानकारी दोनों के भाष्य के विवेचन से विदित होगा।"
—पृ० २३२

"आचार्य सायण ने इन प्रकरणों में से आधियाज्ञिक और ऐतिहासिक प्रणाली को अपनाया जाता है।"
—पृ० २४८

"यास्क समस्त सृष्टि की तीन लोकों पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ में विभाजित करते हैं।"
—पृ० २४६

इसी प्रकार के और भी बीसियों प्रमाण दिए जा सकते हैं।

यहाँ, हमें यह देखकर भी महान् दुःख एवं आश्चर्य हुआ कि विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर भी आँख मींचकर हस्ताक्षर कर देते हैं और तथ्यहीन, अनर्गल, ऊटपटाँग ग्रन्थों पर प्रमाणपत्र प्रदान कर दिये जाते हैं।

लेखिका के ज्ञान [अज्ञान] का नमूना

लेखिका ने महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों की तालिका देते हुए उनमें 'विवाह-पद्धति' भी गिनाई है।
—पृ० २५

वस्तुतः महर्षि दयानन्द ने 'विवाह पद्धति' नाम का कोई ग्रन्थ नहीं लिखा!

और देखिए—

"अभी हाल ही में उन्होंने]ब्लूमफील्ड] ने एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ Concordance to Rigveda छपवाया है।"
--पृ० ३५

देवी जी! ब्लूमफील्ड ने Concordance to Rigveda नामक कोई ग्रन्थ नहीं छपवाया। उन्होंने A Vedic Concordance छपवाया था और हाल ही में क्या आपके पुस्तक लिखने से दो-चार मास पूर्व या दो-चार वर्ष पूर्व छपवाया था। इस ग्रन्थ का पहला संस्करण सन् १६०६ में छपा था दूसरा संस्करण १६६४ में निकला है।

ग्रन्थ में परस्पर विरोध

लेखिका की मान्यता है—

प्रत्येक भाष्यकर्त्ता किसी-न-किसी मत से अवश्य ही प्रभावित रहता है अथवा उसके स्वयं के दृष्टिकोण होते हैं, जिन्हें वह अपने भाष्य में पालन करने का यथासम्भव प्रयास करता है। वैदिक भाष्यकार सायण और दयानन्द इसके अपवाद नहीं हैं:"
—पृ० ६३

इसके विरुद्ध वे अन्यत्र लिखती हैं—

'दयानन्द का अर्थ ठीक है या नहीं, यह कहना कठिन है, किन्तु यह तो स्पष्ट है कि उनका भाष्य किसी विशेष मत, धर्म या अन्धविश्वास का परिणाम नहीं है।"
—पृ० ६६

कहिए देवी जी! आपके कौन से वक्तव्य को ठीक मानें? हमारे विचार में तो दूसरा वक्तव्य ही ठीक है।

एक और नमूना प्रस्तुत है—

"पूर्वोक्त दोनों सूक्तों की तुलना से निष्कर्ष निकला कि दोनों भाष्यकारों के अर्थों में पूण पार्थक्य है।"
—पृ० १४८

इसके विरुद्ध—

"दयानन्द की भाष्यकारिता में सायण का भाष्य सबसे अधिक सहायक था।"
—पृ० २६०

अब दोनों भाष्यकारों के भाष्यों में पूर्ण पार्थक्य है फिर दयानन्द की भाष्यकारिता में सायण के भाष्य को सबसे अधिक सहायक बनाना अपनी अज्ञानता का परिचय देना है। महर्षि दयानन्द पर सायण का प्रभाव होता तो उसके भाष्य में भी सायण की झलक दिखाई देती जो कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती।

भाषा का नमूना

अब तनिक लेखक की भाषा का सौन्दर्य भी निहार लीजिए—

"भारतीय परम्परा के अनुसार वेद मानव का प्रमुख एवं उच्चतम धर्मग्रन्थ में 'ईश्वर' या 'देवता' का प्रमुख स्थान होता है।" —पृ० २२३

"तुम दोनों ने भुज्यु नामक व्यक्ति को उसके साथियों सहित समुद्र में निमग्न होते हुए को अथक परिश्रम से सतत गमन करने वाले नौका पर बिठाकर बाहर ले आए।" —पृ० २३१

"प्रस्तुत सूक्त के "अश्विनौ" देवता है।" —पृ० २३२

"इत्यादि बातों की जानकारी दोनों के भाष्य के विवेचन से विदित होगा।" —पृ० २३२

"उपर्युक्त वचन से प्रतीत होता है कि मित्र, वरुण और उर्वशी से वशिष्ठ की है तब वशिष्ठ अर्थात् जल की उत्पत्ति होती है। —पृ० १६२

परन्तु दो पंक्तियों के पश्चात् ही लेखिका का कथन है—

"वशिष्ठ से मित्रावरुण के उत्पन्न होने के कारण इन्हें नैत्रावरुण[1] कहा जाता है।" —पृ० १७२

मित्र और वरुण से वशिष्ठ उत्पन्न होता है या वशिष्ठ से मित्रावरुण—यह लेखिका ही जानें।

"उतथ्य के पुत्र दीर्घतमा ऋषि थे।" —पृ० १४६

"दीर्घतमा की माता, ममता के साथ बृहस्पति ने उस समय रमण किया, जिससे दीर्घतम गर्भ में थी।" —पृ० १५२

एक स्थान पर दीर्घतमा को पुत्र मान, दूसरे स्थान पर पुत्री वस्तुतः वह क्या था? पुत्र या पुत्री अथवा नपुंसक।

सविता ने सूर्या को सोम राजा या प्रजापति के लिए दिया। यह वृषा कपि की पत्नी वृषा कपायि है।" —पृ० १६३

दूसरे स्थान पर लिखा है—

वेद में सूर्य को ही सविता वृषाकपायि, यम, सूर्या[2], आदित्य विवस्वान् आदि नामों से बताया है। —पृ० १६४

तीसरे स्थान पर वे लिखती हैं—

"वेद में वृषाकपायी, सूर्य की पत्नी सूर्या का नाम है।" —पृ० १६५

यहाँ दो स्थानों पर वृषाकपायी को सूर्य की पत्नी बताया है और एक स्थान पर सूर्य को ही वृषाकपायि बताया है। पाठक तो चक्कर में पड़ जाता है। किसे सत्य मानें और किसे असत्य?

एक और रोचक उद्धाण देखिए—

---

१. मूल में 'नैत्रावरुण' है इसलिए वैसा ही छापा है। 'मैत्रावरुण' चाहिए
२. पुस्तक में 'सूर्या' स्त्रीलिंग पाठ ही दिया है।

उत्पत्ति होती है।" —पृ० १७२

इसी प्रकार—

"मित्र और वरुण दो वायु हैं, इन दोनों का जब विद्युत् के साथ सम्पर्क होता है। तब वसिष्ठ अर्थात् जल की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार दयानन्द ने मित्रवरुण, अश्वि, सूर्य आदि के विविध अर्थ प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर किया है।"

इस प्रकार के और भी अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं परन्तु लेख का कलेवर आज्ञा नहीं देता। हां, पाठक इतने उद्धरणों से ही रसानन्द में विभोर हो जाएंगे। इतना सुन्दर वाक्य विन्यास पाठकों ने शायद ही कहीं देखा हो।

विसंगति एवं अस्पष्टता

लेखिका ने महर्षि के पदार्थ को अपनी अज्ञानता के कारण अस्पष्ट लिखा है उसका विवेचन हम कर चुके हैं अब आप इस ग्रन्थ की लेखिका की अस्पष्टता देखिए—

"अथर्ववेद में ईश्वर उपदेश करते हैं कि सत्य क्या है? और अनृत क्या है? इसका विवेचन कर? वेद की वाणी को मनुष्यों पर प्रकट करता है। —पृ० ४०

जब हम गौ शब्द बोलते हैं, तब गौ शब्द बोलते हैं, तब गौ शब्द, गौ अर्थ और गौ ज्ञान ये तीनों मिले हुए रहते हैं।" —पृ० ७४

कितना मार्मिक और कैसा स्पष्ट वाक्य? है? देखा है किसी ने कभी इससे सुन्दर और स्पष्ट वाक्य?

महर्षि दयानन्द ने इन ऋचाओं के शब्दों के ऐतिहासिक अर्थ नहीं किया है।" पृ० १३३

"इन्द्र अपने वज्र से लोकों का आवृत्त करने वाले अन्धकार रूप वृत्त अथवा वृत्त नामक असुर को वैसे ही छिन्न बाहु कर दिया जैसे तीक्ष्ण कुठार से किसी के कन्धे को उससे अलग कर दिया जाता है।" —पृ० १५८

'कन्धे को उससे' उससे किसका? क्या कन्धे से कन्धे को अलग कर दिया जाता है।

"पानी और ज्योतिषियों के मिश्री भाव कर्म से वर्षा होती है। इसी रहस्य को अलंकार में इन्द्र वृत्त युद्ध कहा जाता है।" —पृ० १५६

पानी और ज्योतिषियों का क्या सम्बन्ध है यह रहस्य लेखिका को ही ज्ञात होगा। "पानी और ज्योतिषियों के मिश्रीभाव कर्म से वर्षा होती है।" कैसा सुन्दर एवं स्पष्ट भाव है! स्वयं लेखिका की समझ में नहीं आया होगा कि वह क्या लिख रही है, पाठक तो फिर इस रहस्य को क्या समझेंगे। इन्द्र और व्रज के युद्ध की चर्चा तो अनेक बार हमने पढ़ी है परन्तु यह 'वृत्त' कौन है यह हमारे लिए भी पहेली ही है। लेखिका ने १५-२० बार इस शब्द का प्रयोग किया है।

"वह वर्तमान हुआ, इसलिए नाम इन्द्र है।" —पृ० १६०

कितना स्पष्ट वाक्य है! सर्वथा अर्थशून्य।

"वृत्त इन सबको घेरकर सो रहा था, इसके अन्दर जो द्यौं, पृथिवी है, उसको आच्छादित करके सोता है, अतः उसका नाम वृत्त है।" —पृ० १६१

देवी जी! आप ही ईमानदारी से बताइए, क्या यह वाक्य स्पष्ट है? हमने निर्णय आपके ऊपर ही छोड़ा। आपका निर्णय हमें सर्वथा मान्य होगा।

"ओषजन, जो जमी हुई की अवस्था है, वह शक्तिशाली और संक्रामक रोगों

को फैलाने वाले कीटाणुओं का नाशक है। विद्युदगर्जना से विनाशकारी जन्तुओं का होता है, यह वैदिक साहित्य से भी विदित होता है।" —पृ० १७१

इस स्पष्ट वाक्य? की प्रशंसा में कुछ कहना व्यर्थ है।

"एक अन्य मन्त्र और वरुण को 'घृतयोनी' कहा गया है।" —पृ० १७२

यहां हमने कुछ ही वाक्य नमूने के रूप में प्रस्तुत किए हैं पाठक इतने से ही समझ लेंगे कि लेखिका ने अपने अज्ञान को महर्षि पर लादने का प्रयास किया है।

सार्वदेशिक सभा से इसका प्रकाशन क्यों ?

यह पुस्तक कितनी भ्रष्ट, तथ्यहीन और अनर्गल प्रलापों से पूर्ण है, यह पाठकों को भी भली-भांति विदित हो गया होगा। हमें आश्चर्य इस बात का है कि सार्वदेशिक सभा ने ऐसी भ्रष्ट पुस्तक क्यों प्रकाशित की? जिस सभ को महर्षि दयानन्द पर किये जाने वाले आरोपों का उत्तर देना चाहिए था, उसने स्वयं यह पुस्तक छाप कर महर्षि दयानन्द के पाण्डित्य और व्यक्तित्व पर कुठाराघात किया है।

सार्वदेशिक सभा ने यह पुस्तक क्यों प्रकाशित की, बहुत सोचने के पश्चात् मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि सार्वदेशिक सभा में या तो प्रच्छिन्न पौराणिक बैठे हुए हैं जो ऊपर से आर्य समाजी बने हुए हैं, अन्दर से जनसघी, आनन्दमार्गी और पता नहीं क्या-क्या हैं? अथवा वहाँ जो अधिकारी बैठे हैं वे अन्धे हैं, उनमें कोई यह देखने का प्रयत्न ही नहीं करता कि क्य वस्तु छप रही है अथवा वहां मूर्खों का बोलबाला है, उन्हें पता ही नहीं क्या छप रहा है?

कुछ भी हो सार्वदेशिक सभा ने इस पुस्तक को छाप कर एक जघन्य अपराध किया है। हमारी मांग है कि—

१. सार्वदेशिक सभा के अधिकारी अपने इस दुष्कृत्य के लिए जनता से क्षमा मांगें।

२. इस पुस्तक को रद्द घोषित किया जाय और इसकी बिक्री तुरन्त रोक दी जाए।

३. भविष्य में ऐसा कोई ग्रन्थ न छापा जाए। किसी भी ग्रन्थ को छापने से पूर्व विद्वानों की एक समिति बनाकर यह निर्णय ले लिया जाय कि यह ग्रन्थ छापने योग्य है या नहीं।

आर्य समाजों से !

अन्त में हम आर्य समाज के अधिकारियों से निवेदन करेंगे कि वे आर्य समाज के साप्ताहिक अधिवेशनों में इस आपत्तिजनक पुस्तक के विरुद्ध प्रस्ताव पारित करके सभा के अधिकारियों के पास भेजें और उनसे मांग करें कि वे इस भ्रष्ट पुस्तक के प्रकाशन के लिए खेद व्यक्त करें और पुस्तक को रद्द करके उसकी बिक्री तुरन्त बन्द करें।

मुद्रक-प्रकाशक-संपादक पंडिता राकेशरानी के लिए भाटिया प्रेस दिल्ली में

ओ३म्

मासिक
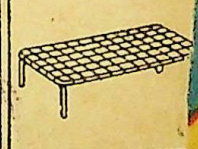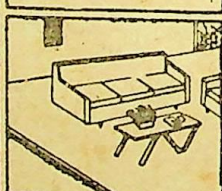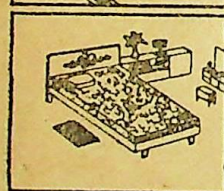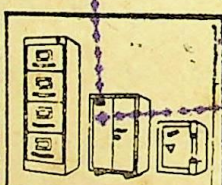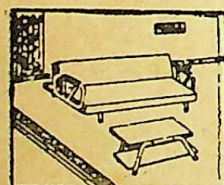
अक्तूबर १९७४
रजिस्टर्ड नं०
डी०-(सी०) २०१
R.N. 10711/65

जन-ज्ञान (मासिक)
१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग
नई दिल्ली-५

जनवरी १९७५

रजिस्टर्ड नं०
डी०-(सी०) २०१
R.N. 10711/65